पाताल-विजय

हिन्दी-भवन
अनारकली, लाहौर

हिंदी भूषण परीक्षा की सहायक पुस्तकें

व्याकरण की प्रश्नोत्तरी

ले०—श्री भीष्मप्रताप शास्त्री, बी. ए. और कविराज रामलाल
अग्रवाल, हिन्दी-प्रभाकर, विशारद

संपादक—श्री धर्मचंद्र विशारद

इस पुस्तक में हिन्दी का सारा व्याकरण बहुत आसान भाषा में प्रश्न और उत्तर के रूप में समझाया गया है। विद्वान संपादक ने इसे हर तरह से विद्यार्थियों के लिये उपयोगी बना दिया है। पुस्तक लेते समय संपादक का नाम अवश्य देख लें। मूल्य ।-)

व्याकरण का चार्ट

इस चार्ट की सहायता से हिन्दी का सारा व्याकरण १० मिनट में दोहराया जा सकता है। ठीक परीक्षा के समय काम आने वाली चीज़ है। मूल्य ≡)

हिंदी भूषण परीक्षा की सहायक पुस्तकें

रस और अलंकार

ले०—पं० रामबहोरी शुक्ल, ऐम. ए., साहित्यरत्न,
क्वींस कालेज बनारस

इस पुस्तक में रस और अलंकार का कठिन विषय बड़ी सरलता-पूर्वक समझाया गया है। प्रत्येक अलंकार के लक्षण, उदाहरण, तथा अलंकारों के पारस्परिक भेद विद्वान् लेखक ने बड़ी खूबी से समझाये हैं। सभी उदाहरण आजकल की खड़ी बोली की कविता से दिये गये हैं, जिससे विद्यार्थी बड़ी आसानी से उन्हें समझ सकते हैं। इसको पढ़कर हिन्दी भूषण के विद्यार्थियों को इस विषय की और कोई पुस्तक पढ़ने की आवश्यकता नहीं रहती। मू० ।।।=)

पिंगल परिचय

(ले०—रामबहोरी शुक्ल एम. ए., साहित्य-रत्न, क्वीन्स कालेज, बनारस)

इसमें 'सरल अलंकार' के सब छन्दों के लक्षण उसी छन्द में देकर उसके उदाहरण खूब समझाकर दिये गये हैं, जिस से विद्यार्थी बहुत आसानी से छन्दःशास्त्र को समझ सकते हैं। मू० ।=)

पाताल-विजय

लेखक—

श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'

द्वितीय संस्करण } अप्रैल १९३९ ई० { मूल्य ।।।=)

प्रकाशक—

श्री हरिकृष्ण प्रेमी

संचालक—भारती प्रिंटिंग प्रेस,

लाहौर।

लेखक की अन्य रचनाएँ

नाटक—

रक्षा-बंधन	॥।=)
प्रतिशोध	१)
शिवा-साधना	१।)

काव्य—

अनन्त के पथ पर	१)
आँखों में	१।)
जादूगरनी	॥।)

मुद्रक—

लाला राम भेजा कपूर

मालिक

लाहौर आर्ट प्रेस,

१६, अनारकली लाहौर।

जीवन-संगिनी !

तुमने केवल दिया है लिया नहीं।
मैं तुम्हारे प्रति सबसे अधिक कृपण रहा हूँ
और तुम मेरे प्रति सब से अधिक उदार।
आज देने भी चला हूँ तो एक तुच्छ-सी वस्तु।
पर मैं समझता हूँ तुम्हारा हाथ लगते ही
वह बहुमूल्य और अमर
हो जावेगी।

तुम्हारा—
बेदर्द साथी
हरि

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

शत्रुजित	...	...	अयोध्या का महाराजा
ऋतुध्वज	...	...	अयोध्या का राजकुमार
इन्द्र	...	...	स्वर्ग का महाराजा
पातालकेतु	...	...	पाताल का महाराजा
तालकेतु	...	...	पातालकेतु का भाई
गालव	...	...	ऋषि
नारद	...	...	ऋषि
विश्वावसु	...	...	गंधर्व देश का राजा
मयदानव	...	...	पाताल देश का वैज्ञानिक
विंद्यवान	...	...	गंधर्व देश का मन्त्री

स्त्री-पात्र

मदालसा	...	...	विश्वावसु की कन्या
कुण्डला	...	...	विंद्यमान की कन्या
महारानी	...	...	ऋतुध्वज की माँ

———

पहला अंक

दृश्य १

[समय—संध्या। स्थान-उद्यान। मदालसा अकेली]

मदालसा—(गान)

मैं बदल रही हूँ क्षण-क्षण !
यह कैसा है परिवर्तन ?

पलकों में छल-छल छल-छल
भर आता है जल पल पल,
अंतस्तल चंचल-चंचल,
आकुल-सा रहता है मन।

मैं बदल रही हूँ क्षण-क्षण !
यह कैसा है परिवर्तन ?

कृश-कृश होता निशि-दिन तन,
उर रहता उन्मन उन्मन,
अनजाने घिर आए घन
जीवन में सजल सघन घन !

मैं बदल रही हूँ क्षण-क्षण !
यह कैसा है परिवर्तन ?

(कुण्डला का प्रवेश)

कुण्डला—मदालसा ! यह कैसा गीत ? इस सन्ध्या की धूमिल छाया में तेरा मन इतना चंचल क्यों हो रहा है ?

मदालसा—पता नहीं क्यों ? हृदय कुछ अस्थिर हो रहा है—यों ही कुछ गा कर उसे बहला रही हूँ । आज संध्या कुछ उदास प्रतीत होती है !

कुण्डला—मुझे तो दिन-रात, प्रभात-संध्या, वसन्त-शिशिर, सभी उदास जान पड़ते हैं ! दिन पहाड़ की भाँति भारी, रात प्रलय की भाँति भयानक ! संसार मानो मेरे चिरवांछित के मार्ग में खाई बन कर पड़ा हुआ है !

मदालसा—सखी, तू बड़ी दुखी है । तेरे दुख से मेरा हृदय विदीर्ण होता है ।

कुण्डला—मेरा दुख तो अनिवार्य्य है, सखी ! उसके लिए चिन्ता करना व्यर्थ है ! चिन्ता तो तेरी है । अभी से तेरा यह उदास भाव ! तेरे आगे तो सुख का सागर लहरा रहा है ! तेरी जीवन-तरणी को आशंका क्यों ?

मदालसा—तूने सर्वस्व पाकर खो दिया है और मैंने अभी कुछ नहीं पाया ? एक अज्ञात आशंका से मेरा मन घायल-सा रहता है । तुम्हें उस दिन की याद है न, जब हम नदी के तट पर बैठे गीत गा रहे थे । कैसा निर्मल आकाश था । हमारे देखते-देखते ही अचानक न जाने कहाँ से बादलों का दल का दल आकाश में चढ़ आया और मूसलाधार वर्षा होने लगी । मेरा जीवन सुख और वैभव के पालने में पला है, किन्तु भीतर ही भीतर एक वेदना कसका

करती है। भविष्य के आकाश में मेरे लिए कौन-सा वज्र प्रतीक्षा कर रहा है, यह किसे मालूम ?

कुण्डला—मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है। वह अपनी कल्पना के जाल में अपने हृदय को फाँस कर, छाया को आकार देकर, व्यर्थ ही चिंतित होता रहता है। हम वर्तमान के फूलों पर चल सकते हैं तो विधाता भविष्य के शूलों पर चलने का भी हमें बल देगा।

मदालसा—नारियों को विधाता ने इतना कोमल, इतना शंकाशील क्यों बनाया है। वे बिना किसी के आश्रय के जीवन व्यतीत ही नहीं कर सकती। जिस प्रकार लताओं में अपने ही बल पर खड़े होने की सामर्थ्य नहीं—उसी तरह स्त्री संसार में स्वावलम्बिनी नहीं बन सकती ! ऐसा क्यों है ?

कुण्डला—ऐसा क्यों है ! कुछ तो विधि का विधान और कुछ जन्म-जन्मान्तर के संस्कार। नारी चाहे तो स्वावलंबिनी बन सकती है, किन्तु, उससे सृष्टि में सहयोग का सूत्र टूट जायगा। स्त्री ने कोमल बन कर मनुष्यता को अपनी गोद में खिलाया, बहन, यही तो नारीत्व की श्रेष्ठता है। लताएँ वृक्षों की भाँति कठोर होकर खड़ी होंगी तो विश्व-वाटिका कठोरता का प्रतिरूप बन जायगी। मुझे ही देखो न, आज मैं बेसहारा होकर, नारी नहीं रही, पुरुष हो गई हूँ। ऐसा कौन-सा कार्य है जो पुरुष कर सकता हो, और मैं न कर सकूँ। किन्तु, मैं प्रत्येक क्षण अनुभव करती हूँ कि यह मेरी वास्तविकता नहीं है।

मदालसा—तू दुखी न हो तो एक बात पूछूँ ?

कुण्डला—तू पूछ अवश्य, चाहे मैं दुखी होऊँ या सुखी !

मदालसा—तेरे जीवन-स्वामी जब संसार से रूठ कर चले गये, जब कुटिल काल ने अपने निष्ठुर हाथों से तेरे म:तक का सिन्दूर पोंछ दिया तो तुझे इस चर्चा से दुख नहीं होता ।

कुण्डला—यह दुख मुझे अधिकाधिक मिले, मेरी यही कामना है। यह दुःख भी मादक है। फिर भी मेरी यही कामना है, ऐसा दुःख तुझे कभी न प्राप्त हो ! सखी अब मैं जाती हूँ !

मदालसा—मैंने तेरे चित्त पर चोट पहुँचाई ! क्षमा करना !

(कुण्डला का प्रस्थान)

मदालसा—आह, अभागी को कितना दुःख है ! यौवन के प्रथम प्रात में ही इसका जीवन-सूर्य्य अस्त हो गया ! कुण्डला स्वर्गीय पति की स्मृति से व्याकुल हो उठी, इसी लिये सम्भवतः रोने को एकान्त खोजने गई है। ऐ शून्य, दुखियों की कहानी तू ही सुनता है । मूक आँसुओं में कितना हाहाकार सिमिट कर तेरे चरणों पर अर्पित होता रहता है।

(सहसा पातालकेतु का प्रवेश)

मदालसा—कौन हो तुम ? 'तुम्हारा साहस ! इस उद्यान में बिना आज्ञा........ । (क्रोध से ओंठ काँपते हैं)

पाताल०—रुष्ट न हो, युवती, जहाँ वायु जा सकती है, वहाँ पाताल का सम्राट पातालकेतु भी जा सकता है !

मदालसा—सम्राटों के आने का ढंग है यह !

पाताल०—इस कुञ्ज में इसी प्रकार आने वाला विजयी होता है!

मदालसा—दुष्ट कहीं के। इस उपवन में कभी अपवित्र वायु नहीं

बही। पाप ने कभी यहाँ प्रवेश नहीं किया! यहाँ ठहर कर सर्वनाश को निमन्त्रण न दे? दूर हो यहाँ से! इसी क्षण......(पातालकेतु मुसकाता है) इतनी धृष्टता। क्या तुझे प्राणों का मोह नहीं है!

पाताल०—प्राणों का मोह! वाह, क्या भोला प्रश्न है। नारी, मैं धर्म-भीरु मानव नहीं हूँ। मेरी प्रेम करने की रीति ही निराली है। मुझ में इतना बल है कि चाहे जिस कली को तोड़ लूँ। (मदालसा गमनोद्यत होती है।) भागने का प्रयत्न मत करो। मेरा रथ बाहर तैयार है। चलो, अब समय नहीं है। (बाँह पकड़ता है)

मदालसा—(झिड़क कर) सावधान! नरक के कीड़े? इतना साहस न करना।

पाताल०—इस सुन्दर क्रोध ने मुझे और भी निकट खींच लिया, सुन्दरी! अब विलम्ब असह्य है। निष्फल चेष्टा न करो।

(फिर पकड़ता है)

मदालसा—द्वारपाल! द्वारपाल!!

पाताल०—मौत के मुख से लौट कर वह उत्तर देने न आएगा, चुपचाप मेरे साथ चली चलो। (खींचता है)

(मदालसा छूटने की चेष्टा करती है।) अच्छा तो अब कठोरता से काम लेना पड़ेगा। (विवश कर देता है और खींच कर ले चलता है। मदालसा ज़ोर से पीछे हटने की चेष्टा करती है।)

मदालसा—पिता जी! पिता जी!!

(मूर्छित हो जाती है, पातालकेतु उसे उठा कर ले जाता है)

———

दृश्य २

[गन्धर्वराज विश्वावसु का राज महल]

विश्वावसु—संगीत-मुखरित हमारा मादक गन्धर्व-देश ! हमारे उपवन में सदा बसन्त रहता है । यहाँ की कोकिलाओं की पंचम तान कभी मन्द नहीं पड़ती ! हम अपनी बाँसुरी की धुन पर काले नाग को नृत्य कराते हैं, मृत्यु को मूर्छित कर देते हैं !

विंध्यवान—किन्तु हमारे संगीत में अब शासन नहीं रहा, प्रभुत्व नहीं रहा, मुक्ति नहीं रही । गन्धर्व लोक की वीणा के तार आज प्रतिष्ठित पुरुषों के इशारे पर झंकृत हो उठते हैं। संगीत का उद्देश्य आत्म-संतोष, अथवा आत्माभिव्यक्ति नहीं रहा । आज वह व्यापार की वस्तु बन गया है । जो स्वर्ण का टुकड़ा चमकाता है, उसी के आगे अप्सराओं के नूपुर बज उठते हैं ! क्या यह अभिमान की बात है ?

विश्वावसु—त्रिलोक के राजमुकुट हमारे संगीत की एक धुन पर झुकने को प्रस्तुत हैं, क्या यह गर्व का विषय नहीं है ?

विंध्यवान—त्रिलोक को चरणों पर झुकाने के मोह ने ही हमें विलास का बन्दी बना दिया । त्रिभुवन के राज-सिंहासन के बदले भी हमें अपनी आत्मा का संगीत नहीं बेचना चाहिए ! ऐश्वर्य्य का मोह करके गन्धर्वलोक ने पाप को निमंत्रण दिया है ! जिसे आप विजय समझते हैं वही हमारी हार है । स्वर्ण के टुकड़ों ने न केवल संगीत को अपने इशारे पर नचाया । वरन् उसने हमारी

पवित्रता पर भी आक्रमण किया है ! आज सर्वोच्च कला अनंग का अस्त्र बन कर रह गई है ! उसका अलग अस्तित्व ही नहीं रहा।

विश्वावसु—जो निधि विधाता ने उदार होकर हमें प्रदान की है, उसे अपने आप तक सीमित रख कर कृपण क्यों बनें ? उससे यदि किसी का मनोरञ्जन हो तो हमारा क्या बिगड़ता है ?

विद्यवान—मनोरञ्जन ! मनोरञ्जन होता है मित्र के नाते ! बन्धु के नाते ! मनुष्य के नाते ! गुलाम के नाते नहीं ! जब राज-सिंहासन पर बैठ कर कोई उद्धत स्वर में कहता है, "ध्रुपद छेड़ो" तब उसमें अनुरोध नहीं आज्ञा की बू होती है ! आज यदि देवराज इन्द्र आज्ञा दें कि इतनी अप्सराएँ भेजिए तो क्या आप उसे अस्वीकार कर सकेंगे और क्या अप्सराएँ आपकी आज्ञा का उल्लंघन कर सकेंगी ? संगीत जब से ऐश्वर्य्य और अर्थ का क्रीतदास हो गया है, तभी से उसका मूल्य कम हो गया, तभी से उसकी उज्ज्वल चादर पर कलंक के दाग़ लग गये हैं ! हमारे यहाँ के गायक-गायिकाओं को विभव का मोह है, इसीलिए वे अपनी आत्मा को सत्ताधीशों और श्रीमन्तों के चरणों पर चढ़ाने में संकोच नहीं करते ! इसीलिए उनका सम्मान कम हुआ, संगीत का आसन स्खलित हुआ, स्त्री जाति का अपमान और पतन हुआ !

विश्वावसु—स्त्री जाति का अपमान कैसा ? उन्होंने तो अपने रूप और गुण से संसार को पराजित किया है, उसे अपने चरणों का सेवक बनाया है ! ऋषि मुनियों के जप-तप-साधन-संयम सब उनके दर्शन मात्र से पानी की तरह बह गये हैं !

विंद्यवान—क्या यह सम्मान की बात है—अभिमान की बात है ! अखिलेश की इस विभूति को सम्मोहनास्त्र बना कर क्या हम उसका दुरुपयोग नहीं कर रहे । तलवार पर गर्दन गिरे या गर्दन पर तलवार, हानि किसकी है ! योगियों के व्रत भंग कर के स्त्री जाति ने स्वयं अपना ही व्रत भंग कर डाला ।

विश्वावसु—तब तो हमें इन्द्र के आदेश पर अप्सराएँ भेजना बन्द कर देना चाहिए ।

विंद्यवान—केवल अप्सराओं का प्रश्न नहीं है । प्रश्न है सारी नारी जाति का और सम्पूर्ण संगीत कला का । हम संगीत को अप्सराओं और गन्धर्वों के समुदाय विशेष का बन्दी बना कर उसका गला घोंट रहे हैं । सरिता की धारा की तरह, वायु के वेग की भाँति उसे बहने दो, वह सदा स्वच्छ, चिर-पवित्र और अजर-अमर रहेगा । उस पर एकाधिपत्य स्थापित करने के प्रयास में क्या हम उसके मूल पर ही कुठाराघात नहीं कर रहे हैं । संगीत और नृत्य-कलाओं को भवन-भवन में, मन-मन में, भुवन-भुवन में प्रवेश करने दो संसार स्वर्ग बन जायगा ।

विश्वावसु—उन्हें रोकता ही कौन है ! मुझे तो उनके मार्ग में कोई बाधा नज़र नहीं आती ।

विंद्यवान—बाधा ! चारों ओर बाधा ही बाधा है ! हमारा दृष्टिकोण ही बदल गया है ! हमारे गायक-गायिकाओं ने व्यापार की दृष्टि से शिक्षा पाई है ! आत्माभिव्यक्ति की अपेक्षा विभव का मनोरञ्जन ही उनका ध्येय रहा है । इसी कारण संगीत की मूल धारा शान्ति की ओर न जाकर भ्रान्ति की ओर, अमृत की ओर

न जाकर विष की ओर जा रही है । जीवन को सात्विकता के स्वर्ग की ओर ले जाने वाला संगीत आज विलास के नरक की ओर ले जा रहा है । यह सब हमारी स्वार्थपरता का परिणाम है।

विश्वावसु—नृत्य-गान की कला यदि ऐसी घृणास्पद है तो इसका बहिष्कार करना ही उचित है । जिस कला से पाप को प्रोत्साहन मिले, उसकी रक्षा की आवश्यकता ही क्या ?

विंद्यमान—नहीं राजन् ! यह अपवित्रता संगीत और नृत्य का परिणाम नहीं है, वरन् उसे संकुचित बनाने वालों की सृष्टि है ! जो विलासी-समाज उत्सवों में नृत्य-गान कराने में शान समझता है, यदि उसकी पत्नी, माँ और बहनें इस कला की शिक्षा पा सकें और ऐसे अवसरों पर इस कला का प्रदर्शन करें तो उसे कला को पवित्रता की आँखों से देखने का अभ्यास हो जाय । बहिष्कार की अपेक्षा मुक्त प्रचार ही उचित उपचार है । हमने संगीत की धारा को रोक कर, अपने छोटे से समुदाय में बाँध कर उसमें विलास के कीट उत्पन्न कर दिये हैं ।

(घबराई हुई कुण्डला का प्रवेश)

कुण्डला—महाराज ! महाराज ! बज्रपात हो गया !

विश्वावसु—क्यों ?

विंद्यवान—क्यों ?

कुण्डला—मदालसा का पता नहीं है !

विश्वावसु—ऐं क्या कहा ?

विंद्यवान—मदालसा का पता नहीं है ?

कुण्डला—हाँ, मदालसा को उद्यान से कोई हर कर ले

गया ! मैंने उस की पुकार सुनी थी । सुनकर उद्यान की ओर दौड़ी, पर उसे सूना पाया ।

विश्वावसु—यह क्या अनर्थ हुआ, समझ में नहीं आता आँखों के आगे अँधेरा छा रहा है । हाय ! मदालसा !

(सर पकड़ कर स्थिर बैठ जाता है)

विंध्यवान—उफ़, इस सर्वनाश की किसे कल्पना थी !

(कुछ सोच कर)

महाराज, आप चिन्ता न कीजिये । मैं अभी मदालसा की खोज में जाता हूँ ।

(प्रस्थान)

कुण्डला—और मैं भी प्रतिज्ञा करती हूँ कि जब तक उसका पता न पाऊँगी, गंधर्व-लोक में लौट कर न आऊँगी ।

(प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

———

दृश्य ३

[गालव ऋषि का आश्रम, ऋषि गण यज्ञ की तैयारी किए बैठे हैं]

१. ऋषि—आचार्य्य, यह नित्य प्रति का उत्पात कब तक सहन किया जा सकता है ! एक यज्ञ भी तो निर्विघ्न समाप्त नहीं होता। यदि इन विध्वंसक नास्तिकों का समुदाय यों ही बढ़ता गया, इसके धन, बल, विज्ञान, अस्त्र-शस्त्र, वायुयान, जलयानों का उपद्रव यों ही दिन-दूना रात चौगुना होता गया, तो वैदिक धर्म का भविष्य क्या होगा ! ओह, उस भीषण कल्पना से हृदय काँप उठता है।

२. ऋषि—संसार इन राक्षसों की सत्ता से प्रतिक्षण शंकित रह कर कबतक जीवित रह सकता है। इनके इस साम्राज्य-विस्तार से क्या विश्व-शान्ति प्रति दिन संकट में नहीं पड़ती जा रही। अभी तक आर्य्यावर्त में तो इनका पदार्पण नहीं हुआ था, अब तो यहाँ भी इनका उत्पात बढ़ता जा रहा है। क्या ये अच्छे लक्षण हैं।

३. ऋषि पाताल का यह प्रचण्ड राक्षस पातालकेतु तो मानो वैदिक-धर्म का नाम-शेष करने का प्रण कर बैठा है ? यहाँ के क्षत्रय राजा-महाराजा क्या सोते हैं ? क्या उनका कर्तव्य नहीं कि वे इस अत्याचारी का नाश कर धार्मिक स्वतन्त्रता की रक्षा करें।

गालव—वे एकदम उदासीन और कर्तव्य-विमुख तो नहीं कहे जा सकते, पर विवश अवश्य हैं। राक्षस-दल उत्पात करके तत्क्षण भाग जाता है, युद्ध का अवसर ही नहीं आ पाता। उसके विविध मायामय वाहन उसके सहायक हैं।

१. ऋषि—आर्य्यावर्त के सारे शासक संगठित शक्ति-द्वारा इन अत्याचारियों के साम्राज्य को सदा के लिये नष्ट क्यों नहीं कर डालते ?

गालव—यही तो अभाव है, भाई यही तो मर्मव्यथा है। इस महान जन-पद ने सब कुछ सीखा है, सब कुछ अर्जित किया है, केवल संगठन का महत्व नहीं समझा ! इस जाति की महत्ता और विस्तार ही इसके संगठन में महान बाधा है। जो निर्बल हैं, उनका संगठन होते देर नहीं लगती । किन्तु, जिन्होंने अपने बाहुओं के पराक्रम से साम्राज्य स्थापित किए हैं, उन वीरों का संगठन असम्भव है। वे अपनी अपनी उन्नति में इतने व्यस्त हैं कि दूसरों से मिल कर कोई कार्य्य ही नहीं कर सकते ?

२. ऋषिः—जिस महान वैदिक धर्म का आदर्श विश्व-बन्धुत्व है, उसके अनुयायी शासक परस्पर संगठित भी नहीं हो सकते।

गालव—यही तो आश्चर्य और दुख का विषय है । विश्व-बन्धुत्व का दावा भरते हुए भी वे परस्पर युद्ध ही करते रहते हैं। नास्तिकों के अन्त का अलग-अलग प्रयत्न होता है, पर संगठित और समूहिक नहीं। वैदिक धर्म का अन्त कभी का हो जाता, पर वह केवल अपने महान सिद्धान्तों के ही कारण अभी तक साँस ले रहा है। इतनी प्रतिकूल परिस्थितियों में जीवित रहने की शक्ति कदाचित ही संसार के किसी धर्म में हो ! अच्छा भाई, विलम्ब हो रहा है, अब यज्ञ प्रारम्भ करना चाहिए। ईश्वर स्तुति प्रारम्भ करो ।

ॐ विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव भद्रद्रंतन्नासुव।

(पातालकेतु का अपने राक्षसों-सहित प्रवेश)

पाताल०—बन्द करो अपना कर्कश स्वर! रोक दो यह गर्दभ-गान, जनता के धन को आग में डाल कर राख कर देने वाले मूर्खो! पाखण्डियो! तुम संसार को सम्पूर्ण सुखों से, न्याय्य अधिकारों से वञ्चित करते हो। भोग-विलास, आनन्द-मौज की मादक छाया से खींचकर मनुष्यों को जप-तप की कड़ी धूप में खड़ा कर देते हो। मैं तुम्हारा अन्त कर के छोड़ूँगा। ईश्वर तुम्हारे ही दिमाग़ की उपज है, तुम्हीं उसके बाप हो। तुम्हें समाप्त कर दूँगा तो वह भी समाप्त हो जावेगा। याद रखो, प्रकृति सत्य है और सब असत्य! सत्य की उपासना उचित है, असत्य की नहीं। समेट लो अपना पाखण्ड। नहीं तो धर्म और ईश्वर के साथ-साथ तुम्हें भी मृत्यु-शय्या पर डाल दिया जायगा।

गालव—पातालकेतु! वैदिक धर्म का नाश करने के प्रयत्न में अपना ही सर्वनाश निकट न बुला! जड़-प्रकृति की उपासना को सत्य न समझ। इससे केवल दुःख ही प्राप्त हो सकता है। यह ध्रुव सत्य है कि प्रकृति दुःख-रूप है! आनन्द-रूप तो केवल परब्रह्म है! वही अमृत का स्रोत है। उसके निकट आ! तू अभी तक मृग-तृष्णा के पीछे भाग रहा है। केवल पाप बटोर रहा है। पाप का भार पृथ्वी अधिक दिन नहीं सह सकती।

पाताल—चुप रहो। तुम्हारा सर्वेश्वर, सर्व शक्तिमान कहाँ है, कैसा है, अभी पता चल जायगा! जिस अदृश्य के लिये तुम आहुतियाँ अर्पण कर रहे हो, देखें, वह तुम्हारे यज्ञ की रक्षा करता है या नहीं। यज्ञ एक सुन्दर खेल, ईश्वर एक मधुर कल्पना है,

किन्तु वह संसार के सुख के मार्ग में, भोग-विलास के मार्ग में बाधक है। अतः उसे—उस निस्सार कल्पना को संसार से उठाना ही पड़ेगा। ईश्वर मनुष्य की अपेक्षा निर्बल है। मेरे बहादुरो! उठा ले जाओ इनकी यज्ञ-सामग्री, दण्ड कमण्डल! तोड़ दो इस पाखण्ड को। (राक्षस-गण सामग्री उठा कर ले जाते हैं।) अब कहो, कहाँ है तुम्हारा ईश्वर! बुलाओ उसे! (प्रस्थान)

गालव—हे भगवन्, हे दीनबन्धो! इतने दिनों की तपस्या का यही परिणाम! तू नहीं है इस बात को कैसे मान लूँ! तेरे इंगित पर यह जीवन-नौका चलाई है। आज यह भँवर में पड़ गई। क्या तू पार न लगाएगा। आज तेरा कोई आदेश नहीं मिल रहा। आज मेरे हृदय में तेरी वीणा के स्वर नहीं बज रहे! भगवन्! तेरी भक्ति शक्ति भर करने का प्रयत्न किया है, क्या इसी दिन के लिए! जिन ऋषियों को तूने संसार में सर्व प्रथम ज्ञान दिया था, क्या आज तू उनसे रूठ गया है। ऋषि गण! मेरा विचार एक मास पश्चात् एक विराट यज्ञ करने का था, सब को निमन्त्रण भी भेज चुका, पर अब साहस नहीं होता! पातालकेतु उसे भी ध्वंस कर देगा! ऋषि-मुनियों को निमंत्रित कर के भी यज्ञ न करूँ, यह भी नहीं हो सकता। दोनों ओर से अप्रतिष्ठा है। मैं लज्जा और आत्म-ग्लानि की ज्वाला में जल रहा हूँ। इससे तो यही अच्छा है कि इस काया के दुखद अस्तित्व को ही मिटा डालूँ! चिता पर चढ़ कर भस्म हो जाऊँ! भगवन्! मुझे अपने चरणों में स्थान दो! (हाथ जोड़ कर आकाश की ओर देखते हैं)

(पट-परिवर्तन)

दृश्य ४

[इन्द्र का राजमहल]

इन्द्र—महत्वाकांक्षा की आग ने मेरे सरल जीवन को राख कर दिया। शान्ति को स्वप्न बना दिया। निरन्तर चौकन्ना रहता हूँ कि किसी का बल, किसी का तप इतना न बढ़ जाय कि वह स्वर्ग-सिंहासन का अधिकारी हो जाय! वीरों और व्रतियों को पतित करते-करते हृदय पत्थर हो गया है। याद ही नहीं पड़ता कि मेरा और भी कुछ कर्तव्य है। लोग कहते हैं, स्वर्ग में पाप की छाया भी नहीं। अंधे हैं वे, देखते नहीं कि यहाँ मैं मूर्तिमान पाप विराजमान हूँ। कितने महर्षियों के तप-भंग किये। जहाँ मेरा वज्र काम नहीं करता वहाँ कामिनी की चितवन विजयी होती है। कामिनी के रूप को राजनैतिक अस्त्र बनाना कितना घृणित कार्य है! (कुछ सोच कर) मैं इतना निर्बल नहीं कि पश्चाताप करूँ। हः हः! ऐश्वर्य्य का उपभोग भी कोई हँसी-खेल है! स्वर्ग-सिंहासन, त्रिलोक का साम्राज्य प्रचण्ड पराक्रमशाली इन्द्र के लिये बना है, तपोवन के वृद्धों के लिये नहीं, जिनका हृदय पाप-पुण्य की कल्पना से प्रतिक्षण काँपा करता है, मर्त्यलोक के दुर्बल मानवों के लिए नहीं, जिनके हाथ का राजदण्ड अधर्म की हलकी सी आशंका से छूटकर गिर पड़ता है।

(मेनका का प्रवेश)

मेनका—महाराज का सादर अभिवादन! दासी को किसलिए बुलाया है। (मुसकराकर) क्या फिर सिंहासन हिलने लगा ?

इन्द्र—मेनका ! देखता हूँ, आजकल तुम्हारा अभिमान बहुत बढ़ चला है ! समझती हो मेरे बज्र से तुम्हारे रूप में अधिक शक्ति है ! इसी के बल पर तुम मेरा तिरस्कार करती हो, उपहास करती हो ! क्यों ?

मेनका—नहीं, महाराज ! मेरा यह तात्पर्य कदापि नहीं । हमारे तुच्छ रूप को आपने ही सम्मानित किया है । जहाँ आपका बज्र कार्य्य कर सकता था, वहाँ केवल लोक-निन्दा के भय से, आपने हमारा प्रयोग किया है ।

इन्द्र—खैर, छोड़ो इन बातों को ! कुछ मनोरञ्जन का साधन होने दो । अधिक कार्य के पश्चात् हृदय और शरीर शिथिल हो जाता है ! उसके लिए किसी उत्तेजना की, किसी नशे की आवश्यकता होती है ।

मेनका—जो आज्ञा ! (गाती है)

हँस मत मेरे अधः पतन पर,

उधर देख, वह झरना झर कर
उच्च शिखर से नीचे गिर कर,
धवल मोतियों से शुचि मनहर,
बसुंधरा की रहा माँग भर ।
हँस मत मेरे अधः पतन पर ।

वहाँ देख, हिमगिरि पर्वतवर,
जिसके शिखर छू रहे अंबर,
सुरसरि बन, बह चला भूमि पर,
जग-पापों को साथ बहा कर ।
हँस मत मेरे अधः पतन पर ।

(विंध्यवान का प्रवेश)

विंध्यवान–राजन् ! यह क्या ! जब देखो तब नृत्य-गान और भोग-विलास ! इसी अनाचार ने स्वर्ग की मर्यादा कम कर दी है ! प्रतिक्षण रूप की प्याली ढालते रहना ही क्या स्वर्ग के सत्ताधारी की सार्थकता है।

इन्द्र—विंध्यवान ! इन्द्र के सामने बोलते हुए शिष्टाचार का ध्यान रखना चाहिए।

विंध्यवान—आः, क्षमा कीजिए देवराज ! हृदय दुःख से चुटीला बन गया है ! नित्य के व्यवहार भी इसे असह्य हो उठे हैं !

इन्द्र—क्या–क्यों ? क्या कोई भयंकर दुर्घटना हो गई ! मेनका जाओ ! विश्राम का समय अभी नहीं आया (मेनका का प्रस्थान) विंध्यवान ! कहो क्या कहते हो ? तुम पर कौनसा दुःख आ पड़ा !

विंध्यवान—महाराज ! आपके आश्रित प्रतिष्ठित पुरुषों और महिलाओं का मान घोर संकट में पड़ गया है ! क्या राजा का यह कर्तव्य नहीं कि वह प्रजा को अपमान से बचाए ?

इन्द्र—उपदेश की आवश्यकता नहीं ! मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। तुम केवल अपनी बात कहो ! हाँ, क्या हुआ ?

विंध्यवान—महाराज, गन्धर्वराज विश्वावसु की कन्या मदालसा को सहसा कोई हर ले गया !

इन्द्र—ऐं ! समाचार तो वास्तव में दुःखद है ! पर आश्चर्य्य की बात नहीं !

विंध्यवान—यह क्या राजन्, प्रमाद-वश नैतिक नियमों की अवहेलना न कीजिए। महिला जाति के साथ अशिष्टता करने का अभ्यास उचित नहीं।

इन्द्र – कहाँ! मैंने मदालसा का अपमान तो नहीं किया ? उसके रूप की प्रशंसा करना ही अशिष्टता या अपमान कैसे हो सकता है ?

विंद्यवान—दोष हमारा ही है ! हमने सम्पूर्ण नारी जाति की महत्ता कम कर दी। अच्छा, राजन्, क्या मदालसा की खोज करने में कोई सहायता न दीजिएगा ?

इन्द्र—फिर वही ! याद रखो विंद्यमान, इन्द्र आक्षेप और आशंका की चोट नहीं सह सकता। मदालसा की खोज में मैं सहायता क्यों न दूँगा ? क्या विश्वावसु का अपमान मेरा अपमान नहीं ! उनकी पुत्री मेरी पुत्री नहीं ? निश्चिन्त रहो, मैं मदालसा की खोज के लिए अभी दूत भेजता हूँ, जिसने भी यह धृष्टता की है, उसे प्राणदण्ड से कम न दिया जावेगा !

(नारद का प्रवेश)

नारद—कहिए, किसके लिए दण्ड का विधान हो रहा है। अभागे नारद के लिए तो नहीं !

इन्द्र—आइए, महाराज ! आपको यदि मोह हो तो विष्णु का दण्ड-विधान ही काम आ सकता है, इन्द्र का नहीं।

नारद—अब वे दिन गये, महाराज ! अब तो हम सूखे जल के ताल हैं ! हः—हः ! कहिए क्या चर्चा हो रही थी ?

इन्द्र—क्या बताऐं ! यही हमारे गन्धर्वराज की कन्या मदालसा को न जाने कौन हर ले गया !

विंद्यवान—महाराज विश्वावसु उसके वियोग में पागल हो रहे हैं। रानी ने अन्न-जल छोड़ रक्खा है !

नारद—नारद को घूमते-फिरते अनायास ही बहुत सी बातें

ज्ञात हो जाती हैं ! पाताल का राजा पातालकेतु इस समय सारे संसार में घोर अत्याचार कर रहा है ! उसी ने आपकी मदालसा का हरण किया है । समझे !

इन्द्र—इस पातालकेतु के अनाचार ने मुझे भी बहुत समय से शंकित कर रक्खा है !

नारद—पातालकेतु ने भौतिक शक्तियों का बहुत विकास किया है । वह बड़ा मायावी है । उसका ईश्वर की सत्ता पर विश्वास नहीं । वैदिक धर्म का अन्त करने का तो उसने निश्चय ही कर लिया है । गालव ऋषि के आश्रम में आजकल उसने घोर उत्पात कर रक्खा है और बेचारे महर्षि ने उससे तंग आकर शरीर-नाश करने का निश्चय कर लिया है ।

इन्द्र—हूँ ! तब तो गालव ऋषि की रक्षा करनी ही पड़ेगी !

नारद—युद्ध के भौतिक साधनों का उसे बहुत अधिक अभिमान है । अयोध्या की राज-शक्ति बल-पौरुष में तो इस राक्षस से लोहा ले सकती है, पर उसके समान युद्ध के साधन प्राप्त नहीं हैं ।

इन्द्र—नारद जी, आप मेरा 'कुवलय' वायुयान ले जाइए । उसे अयोध्या के राजकुमार ऋतुध्वज के पास पहुँचा दीजिए । मुझे विश्वास है, राजकुमार आर्य्यावर्त को नास्तिकों के आक्रमण से बचा सकेंगे ।

नारद—यही मेरी इच्छा थी ! विद्यवान, आप चिन्ता न कीजिए ! मदालसा चिर-पवित्र है । उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता । वह अधिक दिनों तक बन्दिनी बन कर नहीं रह सकती ! उसका कभी अमंगल न होगा ।

विंद्यवान—आपका आशीर्वाद सफल हो। मेरी पुत्री कुण्डला भी उसकी खोज में निकल पड़ी है।

नारद—आप निश्चिन्त रहें!

विंद्यवान—अच्छा राजन्, तो मैं गन्धर्वराज और उनकी महारानी को सान्त्वना दूँ।

(प्रस्थान)

इन्द्र—वैदिक धर्म का नाश संसार की प्राचीनतम संस्कृति का अंत है। इन्द्र के जीवित रहते, यह सम्भव नहीं। नारद जी, आप ठहरिये, मैं स्वयं अपने सामने आपके लिए यान तैयार कराए देता हूँ।

(प्रस्थान)

नारद—इन्द्र को धर्म-रक्षा का ध्यान है या अपने सिंहासन की चिन्ता? गालव के यज्ञ की रक्षा या पातालकेतु का नाश दोनों में से क्या अधिक अभीष्ट है? नारद सब समझता है! जिस सिंहासन की रक्षा के लिए ऋषियों के तप-भंग किये, उसी को सुरक्षित रखने के लिए यज्ञ-रक्षा का भार उठाना पड़ रहा है। वाह रे स्वार्थ! जब स्वयं इन्द्र जी तप भंग करते हैं तब उसका प्रतिकार कौन करता है? पातालकेतु जब वही करता है तब इन्द्र को नींद नहीं! इस बार मेनका या रम्भा को नहीं भेजेंगे। राक्षसों के अधिकार में आकर फिर ये जादूगरनियाँ इन्द्रलोक को थोड़े ही लौट सकती हैं। हः हः! अब तो बाबा, बुढ़िया रण-चण्डी का ही सहारा है। उसे सुलगाने को बूढ़ा नारद ही है!

(पट-परिवर्तन)

दृश्य ५

[पाताल का राजमहल, मदालसा]

मदालसा—मैं कहाँ हूँ ! स्वर्ग में या नरक में ! आकाश में या पृथ्वी पर ! यह तो मेरा महल नहीं है ! सुन्दर तो है, उससे भी अधिक सुन्दर है। पर इसमें 'मेरा' कोई नहीं, 'कुछ' नहीं ! कोई चीज़ परिचित नहीं। पिता जी, कुण्डला ! महाराज !! कोई उत्तर नहीं ! पुकार दीवारों से टकरा कर लौट आती है और उससे मेरे ही हृदय पर चोट पहुँचती है। क्या मैं मदालसा ही हूँ।

(पातालकेतु का प्रवेश)

पाताल०—निस्संदेह, सौन्दर्य की प्रतिमे !

मदालसा—कौन ? तू ! तू ही मुझे यहाँ ले आया है ? किस लिए ?

पाताल०—यह क्या पूछने की बात है ? इतनी रूप-राशि निर्जन में...शून्य में व्यर्थ हो रही थी।

मदालसा—(बीच ही में बोल उठती है) चुप, निर्लज्ज ! नारी के अपमान का परिणाम भयंकर होता है।

पाताल०—सुन्दरी, इसमें अपमान कैसा ? तेरे हृदय-द्वार पर मैं भिखारी बन कर आया हूँ। निष्ठुर क्यों बनती है ?

मदालसा—बौने का चन्द्र की ओर हाथ बढ़ाना व्यर्थ है !

पाताल०—फिर कटूक्ति ! मैं बौना हूँ ? अभी तक तुझे मेरी शक्ति का परिचय नहीं मिला ! जानती नहीं, तेरा सब कुछ मेरी दया पर निर्भर है ?

मदालसा—तेरी शक्ति ! तेरी शक्ति अबला को चुरा लाने में है ! कायर ! क्यों बढ़-बढ़ कर बातें मारता है । एक कुमारी पर अत्याचार करने में ईश्वर का भय नहीं करता । मुझे मेरे पिता के यहाँ पहुँचा दे । पातालकेतु, मैं तेरे पैरों पड़ती हूँ । मैं तुझसे घृणा करती हूँ, फिर भी आज हाथ जोड़ कर प्रार्थना करती हूँ, मुझे घर पहुँचा दे !

पाताल०—क्या इतने परिश्रम का यही पुरस्कार ?

मदालसा—उसका पुरस्कार तो मौत है, नरक है ।

पाताल०—गर्विणी नारी, तू किससे बातें कर रही है, जानती है ? मुझसे देवराज भी आँखें नहीं मिलाता ! स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य का अस्तित्व मैं नहीं मानता । ईश्वर को मैं मूर्खों के मस्तिष्क का एक विकार मानता हूँ ! समझी ! या तो तुझे मेरी बात पर ध्यान देना होगा, या यहीं घुट घुटकर प्राण दे देना होगा । बोल, जीवन और मृत्यु—दोनों में से किसे चुनती है ।

मदालसा—धिक्कार है ऐसे जीवन पर ! मृत्यु का डर मुझे क्यों दिखाता है ! मृत्यु का डर तो उन्हें हो जो आत्मा की अमरता पर विश्वास नहीं करते ! मृत्यु तो जीवन की जननी है । उसकी गोद में सो जाना मैं सौभाग्य समझती हूँ । जब पाप अत्याचार करने पर उतारू हो जाता है तब हम नारियाँ उसी की शरण जाती हैं । वह अपना शीतल अञ्चल हमारे ऊपर फैला देती है । संसार का कलुषित रूप छिप जाता है !

पाताल०—पर मैं तो केवल प्रणय-बन्धन का प्रस्ताव करता हूँ ! उसमें तो आपत्ति न होनी चाहिए !

मदालसा—क्या कहा ? उसका बन्धन क्या बल-पूर्वक बाँधा जाता है ! नारी-हृदय की स्नेह-धारा किसी ओर मोड़ी नहीं जाती। वह जिस ओर बहना नहीं चाहती उस ओर उसे संसार की बड़ी से बड़ी शक्ति भी नहीं बहा सकती !

पाताल०—जो वस्तु दुलभ है—उसी की प्राप्ति में आनन्द है ! तुझे प्राप्त करने में कैसा भी घृणित कार्य करना पड़े, मैं करूँगा ! मैं पहाड़ को पानी कर दूँगा।

मदालसा—तू मुझे मेरे देश पहुँचा दे। केवल अपनी चाहर-दीवारी के बाहर कर दे। नहीं तो मैं अपने प्राण दे दूँगी !

पाताल०—तेरा देश ! आज वह तेरा नहीं रहा ! पातालकेतु के राजमहल में आने पर अब तेरा विश्वास कौन करेगा ? तेरे लिए केवल पातालकेतु के पास स्थान है। संसार ने तुझे निर्वासित कर दिया। जिन ऐश्वर्य्य, सुख, सम्पत्ति की प्राप्ति के लिए संसार रक्त की नदियाँ बहाता है, वह तेरे चरणों पर स्वयं समर्पित होने आये हैं ! तू उन्हें क्यों ठुकराती है।

मदालसा—नारी का सब से बड़ा ऐश्वर्य उसकी पवित्रता है ! उसके मूल्य पर मैं त्रिभुवन का राज्य भी मोल लेने को तैयार नहीं।

पाताल०—मदालसा, तेरा गर्व स्थिर नहीं रह सकता। यदि प्रार्थना निष्फल हुई तो घोर यंत्रणाओं से तेरा अभिमान चूर करूँगा। अभी तो जाता हूँ।

(प्रस्थान)

मदालसा—भगवन् ! तेरे राज्य में यह कैसा अन्धेर है ! यह

जीवन भार प्रतीत होता है । अपनी गोद में स्थान दे । दीनबन्धो, यह दुख का पहाड़ पटकने से तेरा क्या अभिप्राय सिद्ध होगा ? पिता जी ! कुण्डला !! क्या सब मुझे भूल गए । क्या इस कारागार से कभी उद्धार न होगा !

(पट-परिवर्तन)

दृश्य ६

[वन में चिता बनी हुई है। गालव तथा अन्य ऋषि]

गालव—जहाँ जड़ प्रकृति ने चिर-चैतन्य का आसन ग्रहण कर लिया हो, जहाँ हरिभजन को शान्ति और सुबिधा नहीं, वहाँ एक पल भी साँस लेने की इच्छा नहीं। मैंने आर्य्यावर्त के समस्त ऋषियों और विद्वानों को यज्ञ में सम्मिलित होने को निमन्त्रित किया है, परन्तु, पातालकेतु विघ्न उपस्थित किए बिना नहीं रह सकता। मैं सब को बुलाकर अपना अपमान न होने दूँगा। जब मुझमें यज्ञ करने तक की सामर्थ्य नहीं, तब मेरा मर जाना ही उचित है। जीवन केवल कारागार है, मरण मुक्ति का द्वार है! जीवन से मरण महान है!

१. ऋषि—महर्षि, आत्म-हत्या पाप है! विधि-विधान के विपरीत है!

गालव—विधि-विधान के विरुद्ध पाप पल्लवित हो रहा है। सर्वान्तर्यामी का आदेश आज सुनाई नहीं दे रहा। वह मुझसे रूठ गया है। उसे मनाने जा रहा हूँ। आत्मा अमर है, दुःख स्वरूप शरीर का नाश कर देना पाप क्यों?

२. ऋषि—परन्तु, बिना विधि की आज्ञा पाये, अवधि के पूर्व ही कर्मभूमि से भाग जाना क्या बहादुरी है! सुख-दुख, सुदिन-कुदिन, विभव-विपत्ति, आशा-निराशा सभी अवस्थाओं में अविकल चित्त से कर्म-रत रहना ही तो कर्तव्य-पालन है। विपत्तियों से व्यथित होकर शरीर-त्याग करना कायरता नहीं तो क्या है?

गालव—यह अपदार्थ जीवन मुझे अभिशाप प्रतीत होता है। धर्माधर्म की मीमांसा करने की शक्ति मुझ में नहीं रही। बन्धुओ, विदा!

(चिता पर चढ़ना चाहते हैं, इतने में नारद जी का प्रवेश)

नारद—ठहरो, ठहरो, यह सब क्या है ? कौन सती हो रही है। (गालव चिता पर चढ़ते-चढ़ते रुक जाते हैं।) भूल हुई भूल! यह तो महर्षि गालव हैं। यह तप करने का कौन-सा मार्ग निकाला है, भगवन्, आपने !

गालव—जब सारे मार्ग रुक गये तब अग्नि-प्रवेश के सिवा मार्ग ही कौन-सा हो सकता है ?

नारद—महर्षि के प्रशांत हृदय में भी उद्वेग ! यह मैं क्या देख रहा हूँ। सहसा ऐसी कौन सी विपत्ति टूट पड़ी !

गालव—क्या कहें कुछ कहा नहीं जाता ! अधर्म फल-फूल रहा है और धर्म डूब रहा है !

नारद—धर्म तो नहीं डूब सकता । वह तो अजर-अमर है ! मनुष्य भले ही डूब जाय !

गालव—मनुष्य-समाज अधर्म की ओर अंधा होकर बढ़ रहा है। वेद-विरोधी नास्तिकों का दल-बल बढ़ रहा है। वह तलवार से सत्ज्ञान का अन्त कर देना चाहता है।

नारद—वैदिक धर्म न तलवार के बल पर स्थापित हुआ है न उससे उसका अन्त होगा। ये दो प्रवृत्तियाँ शिव और अशिव, पुण्य और पाप सदा से है। यह तो दुख का विशेष कारण नहीं हो सकता ?

गालव—पातालकेतु मेरा कोई यज्ञ सफल नहीं होने देता! इस आत्म-ग्लानि को कैसे सहन करूँ? इसलिये आज जीवन का अन्त करने का निश्चय किया है!

नारद—इससे तो पातालकेतु का ही अभीष्ट सिद्ध होगा। चिता में जल मरने से आप जल ही सकते हैं, धर्म का उद्धार तो नहीं कर सकते। क्या ऋषि को इतना दुख और निराशा उचित है? यज्ञ-ध्वंस से आप के ज्ञान और भक्ति में न्यूनता नहीं आगई, यह भगवान् खूब जानते हैं!

गालव—फिर संसार के पापाचार का उपचार?

नारद—उपचार क्या चिता पर चढ़ जाने से हो जायगा?

गालव—दुखी हृदय का अन्तिम आधार तो यही है!

नारद—तो आप केवल अपना उपचार करना चाहते हैं?

गालव—अपनी आत्मिक और नैतिक उन्नति के साथ ही संसार का उपकार करना सम्भव है। बार बार पातालकेतु से अपमानित होकर जीवित रहने की शक्ति मुझ में नहीं।

नारद—आप इतने भयभीत क्यों होते हैं। जिस विधाता ने ऋषियों के हृदय में सत्ज्ञान का प्रकाश किया, वही उसकी रक्षा करेगा। धर्म यदि वास्तव में धर्म है, तो उसकी विजय होगी। देवराज इन्द्र ने मुझे आपकी सहायता को भेजा है। उन्होंने अपना कुवलय वायु-यान भी भेजा है। उस पर चढ़ कर पातालकेतु से युद्ध किया जा सकेगा।

गालव—युद्ध। क्या मैं करूँगा।

नारद—कर सकते तो किसी के आगे नत ही क्यों होना

पड़ता । अब तो देश और धर्म के विरोधियों को दण्ड देने का भार जिस समुदाय को सौंपा है, उसी की शरण जाना उचित है। यह वायुयान बिजली की भाँति तेज़ है, उसे लेकर अयोध्या के राजा शत्रुजित के पास जाओ । उनके पुत्र ऋतुध्वज को आश्रम की रक्षा के लिए बुला लाओ । राक्षस-दल समक्ष युद्ध न करके असावधान अवस्था में आक्रमण अधिक करता है। मुठभेड़ होने पर भाग जाता है। इस वायुयान से उसका पीछा किया जा सकेगा।

गालव—इस कृपा के लिए धन्यवाद। चलिये, आश्रम पवित्र कीजिए ।

नारद—न, न, आप कष्ट न कीजिए। मुझे अभी बहुत कार्य्य है।

गालव—अच्छा नमस्ते ।

(गालव तथा अन्य ऋषियों का प्रस्थान)

नारद—पातालकेतु, तू बड़ से बड़ा पाप करता वह इतना भयंकर नहीं होता, जितना एक कुमारी नारी पर अत्याचार। नारी के दुखिया हृदय की आह से बड़े-बड़े राज-सिंहासन हिलने लगते हैं, लुढ़क पड़ते हैं, धूल में मिल जाते हैं। तू समझता है पाप-पुण्य कुछ नहीं, ईश्वर है ही नहीं। तेरे समझ लेने ही से तो जगन्नियन्ता का अस्तित्व नहीं मिट सकता। केवल प्रकृति की उपासना में संसार परमेश्वर को विस्मृति के अन्धकार में नहीं डुबा सकता। मृग-मारीचिका के पीछे भटकने से हृदय की प्यास तृप्त नहीं हो सकती।

गान—

हे महिमामय स्नेहागार !
तेरा एक इशारा ही है
सृष्टि और संहार !
सब नश्वर है अजर-अमर है ।
केवल सर्वाधार !
हे महिमामय, स्नेहागार !

(गाते-गाते प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

दृश्य ७

[अयोध्या का राजमहल, शत्रुजित, महारानी]

महारानी—आप मेरी प्रार्थना पर कभी ध्यान नहीं देते !

शत्रुजित—यह कार्य तो ध्यान न देने पर भी कभी न कभी होकर ही रहता है।

(गालव ऋषि का प्रवेश)

शत्रुजित—(उठकर स्वागत करते हैं) अहा मुनिवर। अहो-भाग्य ! आप के आगमन से यह भवन पवित्र हुआ। कहिये क्या आज्ञा है ? आश्रम में तो कुशल है ?

गालव—कुशल होती तो आपको कष्ट देने क्यों आता ? आश्रम का जीवन इतना संकटापन्न कभी न था।

शत्रुजित—क्यों—क्यों ? संकट कैसा ? मेरे रहते आश्रम-वासियों को कष्ट ! मुनिवर, सत्पुरुषों, ऋषि-मुनियों, विद्वानों और समाज की सेवा के लिये ही मेरा जीवन है। राजा संसार का सब से विनम्र सेवक है। मस्तक का मुकुट और हाथ का दण्ड, स्वेच्छाचार के लिए नहीं, सेवा-सत्कार और उपकार के लिए है, अत्याचार के प्रतिकार के लिए है।

गालव—इसीलिए इस मुकुट का मान है—इस राजदण्ड का प्रभाव है। शासन के मूल में अधिकार-मद न हो, प्रेम, न्याय और धर्म हो तो प्रजा राजा को पिता समझती है।

शत्रुजित—पहले आश्रम की कष्ट-कथा सुनाइये। मेरा हृदय विचलित हो उठा है। इसे अब विलम्ब असह्य है। शीघ्र ही

संकटों से संग्राम करना चाहता हूँ।

गालव—नास्तिक राक्षसों ने मेरे आश्रम में उत्पात मचा रखा है। अत्याचारियों के दल ने पातालेश्वर पातालकेतु के नेतृत्व में वैदिक धर्म के नाश का बीड़ा उठाया है। आस्तिकों को तलवार के घाट उतारा जाता है। यज्ञ ध्वंस किये जा रहे हैं। आश्रम-वासियों पर घोर अत्याचार हो रहा है।

शत्रुजित्—अच्छा! मैं तो समझता था आर्यावर्त में इनका ज़ोर नहीं है। इनका साहस इतना बढ़ गया?

गालव—जब सारे संसार में उन्होंने साम्राज्य स्थापित कर लिया तो आर्यावर्त ही इनके आक्रमण, उत्पात और अत्याचार से अछूता कैसे रह सकता था। लक्षण बड़े अशुभ हैं। एक विदेशी राजा यहाँ के ऋषि-मुनियों के धार्मिक-अनुष्ठानों में बाधा उपस्थित करे, यह यहाँ के वीरों के लिए लज्जा का विषय है!

शत्रुजित्—पातालकेतु को यह न समझना चाहिये कि आर्यावर्त निष्प्राण और निर्वीर्य्य हो गया है। सारे संसार में इस देश की विजय-पताका फहरा चुकी है। उपद्रवियों को दण्ड देने योग्य बल अभी इसके बाहुओं में है।

गालव—मैंने समस्त श्रेष्ठ ऋषि-मुनियों को यज्ञ में निमंत्रित किया था। इधर पातालकेतु ने इस यज्ञ को ध्वंस करने का निश्चय कर लिया। मैं उसके उत्पात से इतना दुखी हुआ कि मैंने शरीर-नाश करने का निश्चय किया। परन्तु नारद जी ने आकर मुझे कहा कि इन्द्र का आदेश है कि मैं आपसे प्रार्थना करूँ।

शत्रुजित्—मैं ससैन्य चलने को तैयार हूँ। पातालकेतु कैसा

भी मायावी और शक्तिशाली क्यों न हो। मैं उसका नाश करूँगा। और यदि धर्म-रक्षा में प्राण चले भी गये तो जीवन सफल होगा।

गालव—आपके जाने की आवश्यकता नहीं होगी। कुमार को अपने बाहु-बल की परीक्षा करने का अवसर दीजिये।

शत्रजित्—क्या मेरी बूढ़ी और अनुभवी हड्डियों का विश्वास नहीं ?

गालव - यह बात नहीं है। क्षत्रिय कभी बूढ़े नहीं होते। देवराज इन्द्र ने अपना कुवलय वायुयान कुमार ऋतुध्वज के लिए ही भेजा है। उस पर चढ़ कर राक्षसों से युद्ध करने का कार्य्य कुमार ही कर सकेंगे।

महारानी—पातालकेतु कैसा मायावी, कपटी और शक्तिशाली है। वह सम्मुख युद्ध करता ही नहीं। सदा आकाशमार्ग से अस्त्र-वर्षा करता है। क्या ऐसे संकट-पूर्ण कार्य्य के लिए कुमार को भेजना उचित होगा ?

शत्रुजित्—महर्षि, पातालकेतु के लिये क्या मैं समर्थ नहीं हूँ ? आप मेरी सेवा स्वीकार कीजिए।

(कुमार ऋतुध्वज का प्रवेश)

गालव—रघुकुल में यह पहली बार ही मोह का साम्राज्य देख रहा हूँ। यदि देश और धर्म डूबेगा तो न आप बचेंगे न कुमार ! धर्म जब संकट में हो तब माँ-बाप को अपने हाथ से अपने युवक पुत्रों को रण-साज में सजा कर युद्ध-भूमि में भेज देना चाहिए। देश और धर्म के लिये जहाँ प्राणों पर खेलने का अवसर आता है, वहाँ, युवक उन्मत्त होकर कूद पड़ते हैं। वृद्ध

पुरुषों को उन्हें अपना शौर्य्य प्रदर्शित करने का अवसर देना चाहिये। उनकी शक्ति का विश्वास और आदर करना चाहिए। उन्हें ममता मोह के अंचल में छिपा लेने से कायरता के बीज बोये जाते हैं। राजन्, मैं उन्हें सुरक्षित रूप में आपको लौटा दूँगा। काल भी उनका बाल बांका नहीं कर सकता।

ऋतुध्वज—पिता जी, यह मोह क्यों ? क्या मैं वीर पिता का वीर पुत्र नहीं ! क्या मेरे बाहु-बल पर विश्वास नहीं। मुझे आपने जिस प्रकार की शिक्षा दी और दिलाई, क्या आज सब व्यर्थ हुई ? यह शरीर नश्वर है कभी पतझड़ के पत्ते की तरह गिर जायगा। इसका मोह क्यों ? इसी दिन के लिये वीर माता-पिता पुत्रों को जन्म देते हैं। भाग्य से ही ऐसा आता है। संसार नश्वर है। केवल धर्म और सत्कार्य्य अमर हैं। आप मुझे पुण्य-संचय से क्यों वंचित रखना चाहते हैं। पातालकेतु की तो हस्ती ही क्या मैं यमराज से भी युद्ध करने को प्रस्तुत हूँ। युद्ध का नाम सुनकर ही मेरा हृदय उन्मत्त हो उठता है। देश और धर्म के नाम पर बलिदान होने का आह्वान पाते ही बड़ी से बड़ी बाधा को तोड़ फैंकने की इच्छा होती है। परन्तु मुझे विश्वास है आप मुझे सहर्ष आज्ञा देंगे।

शत्रुजित्—बेटा, वेदों और उपनिषदों का गंभीर ज्ञान माता-पिता को भी ज्ञात होता है, पर सन्तान की ममता बड़ी बुरी होती है। उसके अंचल के नीचे सारे ज्ञान-विज्ञान छिप जाते हैं। वेदांत चाहे संसार की नश्वरता की घोषणा करता रहे, लेकिन दुनिया में मायामोह अमर रहेंगे। मानव-हृदय की स्वाभाविक-दुर्बलता इनका अभेद्य आधार है। माँ का हृदय असाधारण रूप से कोमल और

शंकाशील होता है । वह अपनी आँखों के तारे को आँखों की ओट नहीं होने देना चाहती । इसे दुर्बलता समझ सकते हो, पर यह अस्वाभाविकता नहीं ! फिर भी मुझे विश्वास है, पितृ-प्रेम और मातृ-स्नेह तुम्हारे पराक्रम के पथ में दीवार बन कर नहीं अड़ेंगे । जंज़ीर बन कर नहीं बाँधेंगे । वरन् आशीर्वाद बनकर साथ जावेंगे । जाओ बेटा, मैं तुम्हें सहर्ष आज्ञा देता हूँ । विजयी होकर आर्यावर्त को यशस्वी करो ।

महारानी—जाओ बेटा, विजय तुम्हारी व़धू बने ।

गालव—धन्य हो, यही रघुकुल के योग्य है । मैं कृतार्थ हुआ।

(कुमार माता-पिता के चरण छूता है)

शत्रुजित्—अपने साथ उचित सेना ले जाना न भूलना ।

(गालव और ऋतुध्वज का प्रस्थान)

शत्रुजित्—पुत्र-प्रेम हृदय को विकल कर रहा है, किन्तु राज-कार्य, क्षत्रिय-कर्म बड़ा कठोर है । प्रजा के लिये पुत्र, पत्नी आदि सब को बलि कर देना पड़ता है ।

(पटाक्षेप)

———

दूसरा अंक

दृश्य १

[पातालकेतु का राजमहल, पातालकेतु अकेला]

पाताल०—आज संसार हमें आर्यों की अपेक्षा नीच क्यों समझता है ? आर्य हमारे साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध रखना अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझते हैं, इसी लिए मैं उनके साथ बलपूर्वक संबंध स्थापित करना चाहता हूँ। इसीलिए मैं मदालसा को बलपूर्वक हर लाया हूँ। यह और कुछ नहीं, आर्यों के दम्भ के प्रति विद्रोह है।

(नेपथ्य से गान की ध्वनि आती है)

कब तक व्यथा सहूँ मैं, प्यारे !
ज्योत्स्ना ने है आग लगाई !
शशि ने विष की धार बहाई !
अगणित अंगारे हैं तारे !
कब तक व्यथा सहूँ मैं, प्यारे !

हाय, कहाँ पर मेरा घर है,
किससे पूछूँ मार्ग किधर है !
हँसी उड़ाते हैं जन सारे।
कब तक व्यथा सहूँ मैं, प्यारे !

पाताल०—कौन गा रहा है यह ? कैसी मधुर तान है ! कैसा कोमल, कमनीय और करुण स्वर है यह । कण्ठ तो बिलकुल अपरिचित जान पड़ता है। द्वारपाल ! द्वारपाल !!

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—(अभिवादन करके) आज्ञा।

पाताल०—जाओ, इस गान के स्रोत को यहाँ ले आओ !

द्वारपाल—जो आज्ञा। (प्रस्थान)

पाताल०—आहुति डालने से यदि आग और अधिक न बढ़ती ! लालसाओं की प्यास यदि एक बार बुझ सकती ! इस विराट आयोजन का फल प्राणों का दिन-रात तड़पना न होता ! मुझे ऐश्वर्य और विलास के इतने साधन प्राप्त हैं, फिर भी सब कुछ पाकर यही प्रतीत होता है मानों अभी कुछ नहीं पाया। पर इस न पाने में भी एक बात है ! तपोवन के ठूँठ और मर्त्यलोक के भीरु इस अनन्त अतृप्ति—इस विराट तृष्णा का मज़ा क्या जाने। इसके लिए प्रचण्ड-शक्ति की आवश्यकता होती है।

(कुण्डला का प्रवेश)

कुण्डला—मुझे............क्यों ?

पाताल०—घबरा मत ! तुझे कोई कष्ट न होगा ! मैंने ही तुझे बुलाया है। तेरा स्वर तो मधुर है, पर इस सुख के राज्य में तू दुख का गीत क्यों गाती है ! कौन है तू ?

कुण्डला—एक दुखिया भिखारिन ! दुख के गीत गा-गाकर मौत का आह्वान करती रहती हूँ।

पाताल०—इस आयु में—मृत्यु का आह्वान! तुझे देख कर तो यह नहीं जान पड़ता, कि तू भिखारिन है!

कुण्डला—मैं आर्यावर्त के एक धनी व्यापारी की कन्या हूँ। मेरे पिता इस देश में जहाज़ भर कर लाये थे। उनको डाकुओं ने हत्या कर डाली और द्रव्य छीन लिया। मुझ अभागिन को न जाने क्यों दर-दर भीख माँगने को छोड़ दिया है।

पाताल०—तेरा नाम क्या है?

कुण्डला—करुणा!

पाताल०—तेरे पिता ने ऐसा करुण नाम क्यों रखा? तभी तो यह विपत्ति आई! क्या तुझे भीख माँगने में आनन्द आता है?

कुण्डला—द्वार-द्वार की फटकार किसे प्रिय हो सकती है, पर क्या करूँ?

पाताल—मुझे तुझ पर दया आती है, क्या तू मेरे रनवास में सेविका बनना स्वीकार करेगी! आर्यावर्त की एक कन्या को मैं लाया हूँ, उसका हृदय यहाँ की किसी सेविका से नहीं मिलता! मैं उसी की सेवा के लिए तुझे नियुक्त करना चाहता हूँ।

कुण्डला—सेविका बनकर रहना भी तो सम्मान की बात नहीं।

पाताल०—यहाँ तेरा अपमान न होगा। कोई तेरी ओर आँख उठाकर भी न देख सकेगा। पर, तुझे एक कठिन कार्य करना होगा, जिसे मेरी तलवार नहीं कर सकी। यदि उस कन्या को तू मेरे साथ विवाह करने के लिए राज़ी कर सकी तो तेरे पिता के धन से दस गुना धन देकर तुझे तेरे देश भेज दूँगा।

कुण्डला—आपकी कृपा के लिए कृतज्ञ हूँगी। सेविका को इस कार्य के लिए रखना कुछ विचित्र है। लेकिन नारी के लिए यह कार्य कठिन नहीं। हृदय को कोमलता और उदारता से जीता जा सकता है। कठोरता से नारी का केवल अभिशाप ही मिल सकता है, हृदय नहीं। नारी के हृदय को नारी ही बदल सकती है। पुरुष नहीं। यह सेविका आपका आदेश-पालन करने की पूर्ण चेष्टा करेगी।

पाताल०—तू तो इस विषय की विशेषज्ञ प्रतीत होती है, पर जब तक मैं सम्पूर्ण रूप से हार नहीं जाऊँगा, मदालसा की प्राप्ति में किसी का उपकार-भार न उठाऊँगा। मेरे सारे प्रयत्न विफल हो जाने पर ही तुम्हारा अवसर आयगा। जाओ, तुम रनवास में जाओ।

(कुण्डला का प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

———

दृश्य २

[समय—सन्ध्या। मदालसा पाताल के महल में एक खिड़की से झाँक रही है]

मदालसा—पश्चिम-क्षितिज पर स्वर्ण का भण्डार नहीं लुट रहा, आग की लपटें लहरा रही हैं। इस स्वर्ण-महल में मेरा भी जीवन झुलसा जा रहा है। हृदय की प्यास कहीं सोने की ईंटों से बुझ सकती है! विधाता! क्या तुझे मेरे ही साथ निष्ठुर होना था! हाय, यदि मैं फूल न होकर जग के वन में एक काँटा ही होती तो कोई वृन्त से अलग कर, हृदय छेद कर, गले का हार बनाने का प्रयत्न क्यों करता! मधुप पास आने का साहस ही क्यों करते? कलियाँ हँसी उड़ातीं तो उड़ा लेतीं। भौरों की लालसा हृदय के गुह्यतम किवाड़ों को तो न खटखटाती, प्राणों पर वासना का यह निर्दय आघात तो न होता। (क्षण भर निस्तब्ध, विचारमान) मेरी आँखों की लाली मुझे ही हलाहल बन रही है। निगोड़े रूप! तूने किस विपत्ति में डाल दिया। वे दिन स्वप्नों के, नक्षत्रों के समान, एक-एक, आँखों के आगे चमक रहे हैं, जब मैं गन्धर्वपुरी में मौज की लहरों पर नृत्य करती थी। माता-पिता की आँखों की तारा थी, हृदय की मणि थी! हाय, अब उन तक जाने की राह नहीं रही। विहग-दल नीलाकाश की छाया में नीड़ों की ओर उड़े चले जा रहे हैं, केवल मैं ही पराये पींजरे में बन्द हूँ।

(पातालकेतु का प्रवेश)

पाताल०—सूने आकाश में क्या देख रही हो!

मदालसा—अपना सूना जीवन और तेरी चिता !

पाताल०—यह कटूक्तियों का कोष कब तक समाप्त होगा, सुन्दरी ! मृत्यु मेरे लिए भयंकर वस्तु नहीं है ! मैं उसका भी सहर्ष आलिङ्गन कर सकता हूँ। पर तुम मुझसे अञ्चल छुड़ा कर नहीं भाग सकतीं !

मदालसा—व्यर्थ बक बक मत कर ! मुझ अभागिन को यहीं शान्ति से पड़ी-पड़ी मर जाने दे !

पाताल०—अपने उज्ज्वल आनन से मेरे महलों में प्रकाश करो। मेरी पटरानी बनना स्वीकार करो !

मदालसा—जीते जी ! तुझे लज्जा भी तो नहीं आती ! बार-बार तिरस्कृत होकर भी वही बात ! तेरी इस शरीर पर ही तो आसक्ति है—वह तुझे प्राप्त हो जायगा, परन्तु जब उसमें प्राण न रहेंगे ?

पाताल०—मदालसा, तूने मेरे हृदय में आग लगा दी है, उसे शीतल कौन करेगा ?

मदालसा—भगवान का प्रलयंकर बज्र।

पाताल०—निष्ठुर, मेरा साम्राज्य, धन-धान्य, वैभव क्या केवल ठोकर की मार खाने के योग्य है। मैं जानता हूँ, मेरा सम्पूर्ण ऐश्वर्य तेरे आगे तुच्छ है, फिर भी संसार इससे अधिक अर्घ्य तेरे चरणों पर नहीं चढ़ा सकता।

मदालसा—रूप को बाज़ार में बेचने का रिवाज़ पाताल में होगा। सभ्य देश की महिलायें प्रलोभनों का मूल्य पदाघात से अधिक नहीं आँकतीं।

पाताल०—गन्धर्व-लोक की सभ्यता और पवित्रता तो विश्व-विख्यात है। रम्भा, मेनका, उर्वशी आदि वहीं की कीर्ति-पताकाएँ हैं न! उन्हीं के कुल में जन्म लेकर तुम यह धर्मोपदेश कहाँ से सीख गईं। चलो, इन्द्र न सही, पातालकेतु सही। किसी का मनोरञ्जन होने से मतलब। तिस पर मैं तुम्हें विवाह-बन्धन में बाँधना चाहता हूँ। इन्द्र की तरह सभा की शोभा बनाना नहीं चाहता!

मदालसा—अरे वाहरे धर्मात्मा। पहले अपने मुँह की ओर देख, अपने हृदय की ओर देख, अपने कर्मों की ओर देख, पीछे मुझ से ऐसी याचना करना। जिनका हृदय, मन, आत्मा, विश्वास और संस्कृति समान नहीं उनमें विवाह कैसा?

पाताल०—ओ हो। तो क्या तू यह समझती है कि मैं तुझ पर दया नहीं करता?

मदालसा—क्या दया करने की यही रीति है? जिस पर दया की जाती है, उसे अपने बन्दीगृह में बन्द कर देते हैं। नित्य-प्रति अनर्गल लांछनाओं से उसका अपमान करते हैं?

पाताल०—तो क्या तुम्हें यहाँ कोई दुख है?

मदालसा—तब क्या सुख है?

पाताल०—तुम ही सुख को ठुकरा रही हो! कौमार्य्य जीवन की पूर्णता तो नहीं है। विस्तृत संसार में से एक को अपना बनाना है, तो मुझे ही क्यों नहीं......

मदालसा—नारकी, पापी! ऐसे शब्द निकालते तुझे भय नहीं होता! सर्वेश्वर से डर! उसका बज्र कठोर है।

पाताल०—ओहो! सर्वेश्वर! कहाँ है सर्वेश्वर! यदि वह होता

तो उसी दिन मुझे दण्ड देता, जब मैं तुझे हर लाया था ! मुझे उसी समय दण्ड देता, जब मैंने उसके ऋषि-मुनियों के यज्ञ-ध्वंस किये थे ! भीरु संसार जिन कर्मों को पाप कहता है—मैं वही करता आया हूँ, परन्तु, किसी का बज्र मेरे सर पर नहीं टूटा ! इस संसार में जिसके पास बाहु-बल, शासन-शक्ति और धन-बल है वही तो परमेश्वर है ! वह संसार की सुन्दरतम वस्तु का उपभोग कर सकता है ! ऋद्धि-सिद्धियाँ उसके चरणों पर लोटती हैं ! देखें, तेरा यह मान कब तक स्थिर रहता है।

मदालसा—भविष्य के पर्दे में महाकाल का डमरू बज रहा है—! ज़रा कान लगा कर सुन ! नरक की ज्वाला तेरे लिए तेज़ की जा रही है ?

पाताल०—नरक कुछ नहीं, भीरु प्राणियों की एक मिथ्या कल्पना है ! पातालकेतु नरक की ज्वाला से डर कर अभिलाषा पूर्ण करने का अवसर नहीं छोड़ सकता ! क्या तू चाहती है कि वह इस आग में जीवन भर जलता रहे !

मदालसा—तू जल-जल कर यदि राख हो जाय तो पृथ्वी का भार कम हो !

पाताल०—युवती ! क्यों अभिशाप देती है ! देवराज इन्द्र जिसके डर से काँपते हैं, तू उसकी अवज्ञा करती है। गर्विणी बाले ! मरण अथवा मेरे सम्पूर्ण हृदय, सुख-सम्पत्ति और साम्राज्य का आधिपत्य दोनों में से एक बात पसन्द कर ले। (प्रस्थान)

मदालसा—हे जगत्-नियंता भगवान् ! क्या तू केवल कल्पना है ? इतना अत्याचार, इतना अनाचार ! पाप के द्वारा पुण्य का

तिरस्कार और तेरा मौन ! यह क्या रहस्य है ? भगवान्, तू सहायता कर या न कर, मैं अपनी रक्षा करूँगी ! जीवन की पवित्रता ! तेरी रक्षा करनी ही होगी ! मैं बाहर नहीं जा सकती, परन्तु मेरी आत्मा को शरीर से निकलने से कोई नहीं रोक सकता। इन दीवारों में वह बन्दी नहीं रह सकती । बस, अब असह्य है ! मैं इन दीवारों से सर टकरा कर प्राण दे दूँगी ! अभी प्राण दे दूँगी इसी क्षण..........(उन्मत्त सी दीवार से सर टकराने दौड़ती है)

(नेपथ्य में)

सावधान ! परमेश्वर को मत भूल ! उसकी शक्ति पर विश्वास रख । वह आत्मा में पवित्रता बन कर, आँखों में ज्योति बन कर, हृदय में प्रेम बन कर, जीवन में बल बन कर कण-कण में बसा हुआ है ।

(मदालसा स्तम्भित होती है । कुण्डला का प्रवेश)

मदालसा—कौन कुण्डला ! तू यहाँ कहाँ ! यहाँ तो हवा भी आने में संकोच करती है ।

कुण्डला—जहाँ हवा नहीं आ सकती वहाँ कुण्डला आ सकती है । मैं पातालकेतु के यहाँ सेविका हो गई हूँ—केवल तेरे लिये। मैंने उसे फुसलाकर तेरे बन्धन कम कराने की चेष्टा भी की है ।

मदालसा—आओ, आज जी-भर कर गले मिल लें । (गले मिलती है) यही अन्तिम मिलन है ! इस लाञ्छित-जीवन की रक्षा करने से लाभ ही क्या ? प्राण दुःख से पागल हो कर बाहर निकलने के लिये तड़प रहे हैं ।

कुण्डला—नहीं ! अदृश्य की यही आज्ञा है कि तेरे जीवन की रक्षा की जाय। उसी ने मुझे यहाँ पहुँचाया है, वही तुझे मुक्त करेगा। देख, बाहर चन्द्र मुसकरा रहा है, उसमें आज अद्भुत प्रकाश है, विलक्षण शीतलता है। वह मानो किसी अदृश्य सौभाग्य की ओर इङ्गित कर रहा है।

मदालसा—(कुण्डला के कंधे पर सिर रख कर रोते हुए) किन्तु सखी, जब जन्म-भूमि की याद आती है, जब माँ-बाप का प्यार याद आता है, जब गन्धर्वपुरी के बाग-तड़ाग, पशु-पक्षी और सखी-सहेलियों की याद आती है, हृदय का बाँध टूट जाता है, इच्छा होती कि खूब रोया जाय। रोने के सिवा और कुछ नहीं सुहाता, सखी ! इस पिशाचपुरी में आँसुओं के सिवा और किस का सहारा है। असहाय, निरूपा और दुखिया मदालसा पापी की पाप-वासना से बचने के लिये क्या करे ?

कुण्डला—जो कुछ करना है वह कर्तार कर रहा है। तेरी मुक्ति और पातालकेतु की मृत्यु का सन्देश मैं लेकर आई हूँ। विश्वास कर।

मदालसा– तू मेरे अश्रु पोंछने आई है। पर यहाँ तो प्रत्येक प्रभात और संध्या नवीन आँसू लेकर आती है। सखि, तू मेरे अश्रु पोंछते-पोंछते थक जायगी, तेरा अञ्चल प्रतिक्षण इतना गीला रहेगा कि उसे धारण करना कठिन हो जायगा। (रोती है)

(पट-परिवर्तन)

———

दृश्य ३

[समय-रात्रि का प्रथम पहर। पातालकेतु मद-पान कर रहा है। नर्तकी बैठी है]

पाताल०—जब हृदय अंतर्वेदना से बेचैन हो जाता है, तब सुरादेवी, हम तुम्हारा सहारा लेते हैं। आर्य इस अमृत-तुल्य वस्तु से वंचित हैं। वे इसे घृणित वस्तु समझते हैं और जो इसका आदर करता है उसकी छाया से भी दूर भागते हैं। किन्तु पातालकेतु उनके इस दम्भ का उन्हें दण्ड देगा। नर्तकी गीत सुनाओ—

नर्तकी—जो आज्ञा। (गाती है)

हमने कभी न रोना जाना।

विश्व-वाटिका के हम फूल,
नित्य नई लहरों में झूल,
हमको भूत-भविष्यत् भूल !
भाता, हँसना और हँसाना !
हमने कभी न रोना जाना !

अम्बर में घन घिर-घिर आए !
बज्र अनेक यहाँ बरसाए !
ऊँचे-ऊँचे वृक्ष गिराए !
तजा नहीं हमने मुसकाना !
हमने कभी न रोना जाना !

रात्रि हमें आती है धोने,
हम पर अपने आँसू बोने,
रो-रोकर अपने दुख खोने।

हमने सीखा व्यथा दबाना !
हमने कभी न रोना जाना !

पाताल०—आह ! गीत ने प्राणों के तार छू दिए हैं। नर्तकी तुम जाओ !

(नर्तकी का प्रणाम करके प्रस्थान)

पाताल०—विश्व-विजयी पातालकेतु ! तू इन्द्र को पराजित कर सकता है, पर नारी के अभिमान को चूर्ण नहीं कर सकता ! द्वारपाल ! द्वारपाल !

[द्वारपाल का प्रवेश]

द्वारपाल—महाराज !

पाताल०—करुणा दासी को भेजो !

मदालसा—जो आज्ञा ! (प्रस्थान)

पाताल०—आर्य्यों के विरुद्ध मेरे हृदय में एक विद्वेष की ज्वाला जल रही है, उसी ने मुझे मदालसा को हर कर उसके साथ विवाह करने को प्रेरित किया है, किन्तु ऐसा जान पड़ता है, जैसे मैं अपने मूल उद्देश्य को भूला जा रहा हूँ। आज राक्षस कहलानेवाले पुरुष के हृदय में भी दया और कोमलता कैसी ! मदालसा ! तुझे दुःख देते हुए मुझे भी दुःख होता है ! तू कष्टों से डर कर मुझसे विवाह कर लेगी, इसकी भी कोई आशा नहीं। नास्तिकों की अपेक्षा आस्तिक अधिक दृढ़ होते हैं। वे सदा एक अदृश्य शक्ति से धैर्य्य पाते हैं। यद्यपि वह कोरी कल्पना है।

(कुण्डला का प्रवेश)

कुण्डला—महाराज की क्या आज्ञा है ?

पाताल०—तूने अब तक क्या किया ? मदालसा राज़ी हुई ?

कुण्डला—किसी के हृदय में राज्य स्थापित करना, उतना सरल नहीं है, जितना देश-देशान्तर को जीतना ! दिल मनुहार और उपकार से ही मनाया जा सकता है ! मदालसा के प्रतिबन्ध और कम कीजिए ! यदि उसे यह अनुभव हो जाय कि आपके पास भी हृदय है, आपके हृदय में कोमलता है तो धीरे-धीरे उसके हृदय में आपके प्रति कोमल भाव उत्पन्न हो सकता है !

पाताल०—उसके लिए मैं सब कुछ कर सकता हूँ। यह साम्राज्य भी छोड़ सकता हूँ। आज से मदालसा की स्वतन्त्रता और बढ़ाए देता हूँ।

कुण्डला—तब आप निश्चिन्त रहिए। अब विलम्ब न होगा ! आपका काम तमाम होने का समय भी आ गया है ! जब आपके जीवन की सम्पूर्ण साधनाएँ शीघ्र ही पूर्ण होंगी वह सुदिन निकट है ! अब मैं जा सकती हूँ !

(पातालकेतु सम्मतिसूचक सर हिलाता है, कुण्डला का प्रस्थान)

पाताल०—मदालसा ! यदि तुझे न पा सका तो मेरा सारा वैभव, सारा ऐश्वर्य्य व्यर्थ है ! यह साम्राज्य, वायु-यान, जल-यान, शस्त्रागार, सेनाएँ व्यर्थ हैं। इनसे हृदय की आग शान्त नहीं होती ! इनकी गोद कठोर है। आयुभर युद्ध ही युद्ध किया ! वैभव का पहाड़ लगाता रहा, उसका उपभोग करने का अवसर ही न मिला ! ये आर्य्य लोग कैसे भयंकर प्रचारक हैं, इनकी कृपा

से आज हम राक्षस कहाते हैं। लोग हमारी छाया से भी भागते हैं। उनमें और हम में अन्तर ही क्या है ? यही कि उनका धर्म और है, हमारा और! हम ईश्वर को नहीं मानते! उसके मानने से उन्नति में बाधा उपस्थित होती है। गुलामी सब की बुरी। केवल सिद्धान्त-भेद से आर्यों ने हमें घृणित ठहरा दिया! बल, बुद्धि, साहस विभव, किस बात में हम उनसे कम हैं! मदालसा के हृदय में मेरे प्रति जो घृणा है, वह इन्हीं आर्य्यों के प्रचार का संस्कार है!

(तालकेतु का प्रवेश)

ताल०—आपको पता है, गालवऋषि के यज्ञ की रक्षा के लिए अयोध्या के राजा शत्रुजित का पुत्र ऋतुध्वज आया है।

पाताल०—चिन्ता नहीं, तालकेतु यज्ञ की रक्षा कोई नहीं कर सकता! राक्षसों के लोहे में बल है। आर्यों का धर्म यज्ञ करना है, हमारा उसे ध्वंस करना। वे उसकी रक्षा के लिए प्राण दे सकते हैं। हम भी अपने विश्वास पर प्राण दे सकते हैं। इस जीवन के बाद फिर कोई जीवन नहीं। स्वर्ग, नरक, पुनर्जन्म मिथ्या कल्पनाएँ हैं। तप-त्याग व्यर्थ है, जब तक जीना भोग-विलास करना। यही जीवन की सार्थकता है! धर्म की विभीषिका में संसार को फँसाने वालों का अन्त करना ही होगा। चलो, युद्ध की तैयारी करो!

(दोनों का प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

———

दृश्य ४

[गालव-ऋषि का आश्रम । ऋतुध्वज सैनिकों-सहित]

(नेपथ्य से यज्ञ-मन्त्रों की ध्वनि)

ऋतुध्वज—क्षत्रियों का जन्म जिस दिन के लिए होता है वह उपस्थित है ! वीरो युद्ध का गीत गाओ !

सब—(गाते हैं)

भारत के वीरो आओ ।

आँखों में ज्वाला-गिरि भरकर,
प्राणों में तूफान भयंकर,
साँसों में भर सर्वनाश-स्वर,

जग में प्रलय मचाओ ।
भारत के वीरो आओ,
विजय—भैरवी गाओ ।

जग-चरणों में शीश झुकावे,
जिधर हमारी सेवा जावे,
नभ में विजय-ध्वजा फहरावे,

ऐसा शौर्य दिखाओ,
भारत के वीरो आओ,
विजय—भैरवी गाओ ।

ऋतुध्वज—आर्यों की महान संस्कृति ने सारे संसार को प्रभावित किया है । आर्यों का तेज सूर्य के समान पृथ्वी के एक सिरे से दूसरे सिरे तक प्रकाशित है । आर्य्य युद्ध में यम के समान

विकराल हैं, व्यवहार में गङ्गा जल के समान पवित्र हैं और स्वभाव में फूल के समान कोमल। उनके बाहुओं में वज्र, हृदय में बाँसुरी, प्राणों में तूफ़ान और आँखों में आकाश है। यज्ञ हो रहा है, कैसी मधुर ध्वनि है! कैसी शान्ति है! कैसी तन्मयता है! यज्ञों से पृथ्वी पवित्र होती है, वायु शुद्ध होती है, प्राण बलवान होते हैं, चित्त प्रसन्न होता है।

(सैनिक का प्रवेश)

सैनिक—महाराज! पातालकेतु दल-बल सहित चला आ रहा है!

ऋतुध्वज—(वीरों के शस्त्र झंकृत हो उठते हैं) आने दो। वीरो सावधान, वह भीतर न जा सके। चाहे प्राण चले जावें पर राक्षस-दल को प्रवेश करने का मार्ग न मिले। अन्यायियों को दण्ड देने योग्य शक्ति आर्य्यों में है, यह जतादो!

(वीर तत्पर होते हैं)

(पातालकेतु का राक्षसों-सहित प्रवेश)

पाताल०—मेरे विश्व-विजयी बहादुरो! शीघ्रता करो! सीधे यज्ञ-भूमि पर आक्रमण करो!

ऋतुध्वज—रुक जाओ!

पाताल०—आँधी को किसने रोका है? मार्ग छोड़ो! तुम कौन हो?

ऋतुध्वज—तेरी मृत्यु का सन्देश! रघुकुल का राजकुमार ऋतुध्वज! युद्धभूमि में यम से भिड़ जाने वाला क्षत्रिय!

पाताल०—कुमार, यह संसार इतनी जल्दी छोड़ देने योग्य नहीं

है। जीवन का कुछ सुख उठाओ। फिर जब मरने की प्रबल इच्छा हो तो मुझ से युद्ध करने आ जाना।

ऋतुध्वज—तुमने दूसरे राज्य में अनधिकार आक्रमण किया है। तुम्हें दण्ड देना मेरा कर्तव्य है।

पाताल०—और पाखण्डी आस्तिकों का अन्त करना मेरा धर्म है। बुद्धि के शत्रु, तुम उनकी रक्षा करने आये हो, इस लिए तुम्हें दण्ड देना मेरा प्रथम कर्तव्य है।

ऋतुध्वज—आगे बढ़े और तुम्हारा मस्तक पृथ्वी पर लोटा। समझे! हाँ, यदि शस्त्र-समर्पण करके, पहले के आक्रमणों के लिये क्षमा माँगो, आर्यावर्त में फिर न प्रवेश करने का प्रण करो, और अपने राज्य में सबको धार्मिक स्वतन्त्रता दो तो मैं क्षमा कर सकता हूँ।

पाताल०—बको मत! मैं बात नहीं आघात करना पसन्द करता हूँ। वाक्-युद्ध तपोवन के बुड्ढों का काम है। पाताल का तारुण्य और तेज केवल शस्त्र-युद्ध करता है।

(आघात करता है। युद्ध होता है। युद्ध करते-करते सब का प्रस्थान, थोड़ी देर में ऋतुध्वज का लौटना)

ऋतुध्वज—भाग गया, दुष्ट! माया के वायुयान पर चढ़ कर भाग गया। देखूँ कहाँ जाता है। पृथ्वी के दूसरे छोर तक, अवनी-आकाश; अम्बुधि में मैं तेरा पीछा करूँगा। कुवलय-वायुयान पर चढ़ कर अभी आता हूँ। सावधान!　　　　　　(प्रस्थान)

(पर्दा उठता है। यज्ञ करते हुए ऋषि-गण दृष्टिगोचर होते हैं। पूर्णाहुति पड़ती है।)

(पट-परिवर्तन)

दृश्य ५

[पातालकेतु का आनन्द-बन; मदालसा और कुण्डला]

मदालसा—सखी, इस जीवन से तो मृत्यु हज़ार गुना अच्छी है। स्वाभिमान की हत्या करके इस पाप-पुरी के वैभव की बंदिनी बन कर रहना अब एकदम असह्य है ! इच्छा होती है, आत्म-हत्या करके प्राण दे दूँ।

कुण्डला—क्या तू नहीं जानती कि आज प्रभात और दिनों से अधिक उज्ज्वल है, ऊषा के आँगन में पहले इतना स्वर्ण-सुहाग कभी न दिखाई देता था। पक्षियों के कलरव में क्या पहले भी ऐसा संगीत सुना था। ऐसा प्रतीत होता है मानो आज का दिवस तेरे लिये स्वर्ण-दिवस है। सुन, वह किसका गीत गूँज रहा है।

(नेपथ्य में गान)

गाओ, गाओ मोद मनाओ !
मद-परागमय कुसुम खिले हैं,
अलि-कलियों के अधर मिले हैं।
माला गूँथो; साज सजाओ। गाओ, गाओ...।
उषा दान करती है सोना,
इस प्रभात में कैसा रोना,
आँखें खोलो, दर्शन पाओ। गाओ, गाओ...।
विहगों ने छेड़ा है गाना,
भूलीं क्यों तुम हार बनाना,
प्रियतम को माला पहनाओ। गाओ, गाओ...।

(गाते-गाते नारद का प्रवेश)

कुण्डला—नमस्ते, महर्षि !

मदालसा—नमस्ते, मुनिवर !

नारद—सुखी रहो, बेटी मदालसा ! आज सचमुच तेरे जीवन का वह स्वर्ण-प्रभात आ गया है, जिसके लिये तुझे यह घोर तपस्या करनी पड़ी है। पातालकेतु के पापी जीवन का आज अन्तिम दिन है ! जिस के बाण से आज वह मरेगा, वह युवा संसार में सब से अधिक वीर, सुन्दर और पुण्यात्मा है। उसी ने महर्षि गालव के यज्ञ की रक्षा की है, पातालकेतु का बध करने का प्रण किया है। और उसी के हाथों तेरा उद्धार होगा। वह अभी इधर से निकलेगा। तब तू मेरी बात की सत्यता का प्रत्यक्ष अनुभव करेगी। अभी मैं जाता हूँ, समय पर आ पहुँचूँगा।

(प्रस्थान)

मदालसा—सखी, हृदय में अचानक हलचल क्यों प्रारम्भ हो गई !

कुण्डला -(मुसकराकर) सरिता के हृदय में समुद्र से मिलते समय हलचल होती ही है ! यह विधाता का विधान है ! मिलन-लालसा का नाद है। आकर्षण की तरङ्गें हैं, इसका वेग कभी रुका नहीं करता। अदृश्य का हाथ इस जीवन की धारा को जिसमें मिला देने को बहा रहा है, उसकी पूर्व कल्पना क्या की जाय। वह विश्व के सकल सौन्दर्य का स्वामी होगा। वह देखो पातालकेतु आ रहा है उसके कंधे पर एक तीर चुभा हुआ है । तुम जाओ। मैं यहीं छिपकर सारा कण्ड देखूँगी।

(मदालसा का प्रस्थान, कुण्डला छिप जाती है,
पातालकेतु का प्रवेश)

पाताल०—किसी दिन मुझे इस प्रकार पराजित होना पड़ेगा, यह स्वप्न में भी नहीं सोचा था। आह, ऋतुध्वज, तू वास्तव में वीर है, तुझ में कितना बल है, कितना विक्रम है। तू अंधड़ है, तूफ़ान है। बवण्डर है। मैंने किस प्रकार सहस्रों शस्त्रों की बौछार की परन्तु तू ने सब को काट डाला। तेरे तीरों की वर्षा असह्य थी। मुझे कायर की भाँति भाग कर जान बचानी पड़ी! आह, इस तीर से कैसी पीड़ा हो रही है। निकलता भी नहीं, निकालने का अवकाश भी नहीं। ओह वह ऋतुध्वज आ रहा है ! भागूँ ! (भागता है, ऋतुध्वज का प्रवेश)

ऋतुध्वज—दुष्ट, कहाँ भाग गया ! बहुत काल तक तूने मेरे देश में उपद्रव मचाया था। क्या तू ने आर्य्यावर्त को कायर समझ लिया था। न छोड़ूँगा, तेरा पीछा कदापि न छोड़ूँगा, ऐं कहाँ छिप गया ? सम्भव है, इस महल में गया हो ? चलूँ।

(कुण्डला प्रकट होती है और ऋतुध्वज को आने का संकेत कर के महल में घुस जाती है।)

ऋतुध्वज—यह युवती कौन है ? पापियों के देश में यह पुण्य की प्रतिमा-सी कौन है ? यह बिजली की तरह संकेत कर के चली गई। कहीं यह भी पातालकेतु की माया तो नहीं है। कुछ भी हो पैर अपने आप महल की ओर बढ़ रहे हैं।

(प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

दृश्य ६

[पातालपुरी के महल में मदालसा अकेली]

मदालसा—नारदजी के वाक्यों ने न जाने क्यों हलचल उत्पन्न कर दी। जिसे देखा नहीं, जाना नहीं, भला, उसके चरणों पर जीवन-कुसुम कैसे चढ़ा दूँ ? जो पुरुष पातालकेतु को परास्त करेगा, वह अवश्य वीर होगा, परन्तु प्रेम केवल वीरता के ही चरणों पर तो नहीं चढ़ा करता। जो उपकार करता हुआ आयगा, वह सदा क्या सत्कार करना जानेगा। उसकी तृष्णा क्या केवल प्यार से शान्त हो सकेगी, उसके आगमन में केवल मेरा ही आकर्षण तो नहीं है, ऋषियों के यज्ञ की रक्षा का प्रण भी है। यदि मेरी ही खोज को वह आता, तो उसे परिश्रम का पुरस्कार देने का विचार करती ! मैं रास्ते का फूल नहीं हूँ, जिसे कोई इस लिये उठा ले कि वह दिखाई पड़ गया है, और उसे उठा ले जाने से कोई रोक नहीं सकता। (कुछ दूर पर ऋतुध्वज दिखाई पड़ता है।) अरे वह कौन ? वह कौन आ रहा है ? कोई वीर पुरुष प्रतीत होता है। आकृति में कितना आकर्षण है, कैसा विशाल वक्ष-स्थल है, कैसा सुन्दर मुख, प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। थके हुए से प्रतीत होते हैं, रथ भी तो नहीं है, ऐसी कड़ी धूप में... । मेरे हृदय में यह क्या हो रहा है ? मानो, आज पहली ही बार मैंने पुरुष को देखा हो ? हृदय-हृदय में नहीं समाता है। रोम-रोम विह्वल हो रहा है ! इतना सौन्दर्य, इतनी शक्ति, एक साथ...(मूर्च्छित)

ऋतुध्वज—(प्रवेश करके मदालसा को सम्हालता हुआ) यह

कौन ? पातालपुरी में यह निर्मल सौन्दर्य कैसा ? इतना मादक और मोहक रूप! विधाता ने कितने प्रेम, लगन, परिश्रम, और कारीगरी से इस मधुर मूर्ति को गढ़ा होगा। संसार में इतना रूप भी सुलभ है। इसे कोई कैसे सम्हाल सकता है ? जो हृदय सदा विधि-निषेधों के घेरे में बन्द रहा है वह आज एक अनजान और अपरिचित दिशा की ओर क्यों बढ़ रहा है। आया था पातालकेतु को प्राण-दण्ड देने, यहाँ मेरे ही प्राण पागल होना चाहते हैं! ऐं, यह क्या! हृदय धड़कता है। इस एकान्त में, इस रूप-राशि के निकट! प्राणों में तूफ़ान उठता है। यह मूर्च्छित अवस्था में भी मानो मुसकरा रही है, बोल रही है। त्रिभुवन का राज्य, संसार के सारे सुख, जप-तप-साधन-व्रत-कल्याण सब इस अनिन्द्य सुन्दरी के चरणों पर वार देने योग्य हैं। मैं राजकुमार न होकर इस निष्कलुष सौन्दर्य्य के चरणों की धूल होता, इसके चरण-नूपुरों का स्वर होता! पातालकेतु, तेरा देश वास्तव में मायामय है। एक पावनता की प्रतिमा महल के बाहर दिखाई दी थी, दूसरी मोहक मूर्ति यहाँ मूर्च्छित पड़ी है! यह क्या मुझे भुलाने के लिये माया-जाल रचा है। ओह, जिस युवती को मैंने देखा था, वह भी यहीं आ रही है!

कुण्डला (प्रवेश करके)—अरे, तुमने मेरी सखी को मूर्च्छित क्यों कर दिया ?

ऋतुध्वज—देवि, मैं तो इन्हें होश में लाने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

कुण्डला—ऐसे सुन्दर युवक किसी को होश में ला सकते हैं ?

ऋतुध्वज—यह अचानक मूर्च्छित क्यों हो गईं ? मैं स्वयं असमञ्जस में हूँ।

कुण्डला—जो व्यक्ति अपने जीवन को निराशा के अंधकार में विसर्जित कर चुका है, यदि अचानक उसे आशा की एक किरण दिखाई दे जाय तो वह आनन्द से बेसुध हो ही जाता है। उस व्यक्ति की कल्पना करो जिसे फाँसी की सज़ा दी गई हो और जिसे अचानक छुटकारे का आश्वासन मिल जाय? वही हाल मेरी सखी का है।

ऋतुध्वज—निराशा के अन्धकार में जीवन-समर्पण! फाँसी से छुटकारा!! ये क्या पहेलियाँ हैं। तुम पाताल की माया-मूर्ति तो नहीं हो। किन्तु, तुम्हारी आँखों में जिस सरलता की छाप है, तुम्हारे मुख पर जिस तपस्या का तेज है, वह क्या किसी मायामयी को प्राप्त हो सकता है! अच्छा, देवि यदि धृष्टता न हो तो मैं (मदालसा की ओर देखकर) आपका परिचय पूछना चाहता हूँ।

(मदालसा होश में आकर लज्जित, संकुचित बैठ जाती है)

कुण्डला—यह गन्धर्वराज विश्वावसु की कन्या राजकुमारी मदालसा है!

ऋतुध्वज—यहाँ पातालपुरी में कैसे?

कुण्डला—दुष्ट पातालकेतु इसे हर लाया है! इसके साथ ज़बर्दस्ती विवाह कर लेना चाहता है। परन्तु वेदों की ऋचा के समान पवित्र मदालसा पर जंगली राक्षस का अधिकार कैसे हो सकता है? वह इसे विविध प्रलोभन, कष्ट और धमकियाँ दे दे कर हार चुका है। इस दुःख से ऊबकर मेरी सखी आत्म-हत्या करना चाहती थी, परन्तु नारद जी के आश्वासन ने इसे अभी तक जीवित रखा है।

ऋतुध्वज—नारद जी ने क्या आश्वासन दिया था ?

कुण्डला—उन्होंने कहा था कि पातालकेतु ने गालव ऋषि के आश्रम में उपद्रव करना आरम्भ किया है। वहाँ से एक वीर आ कर मदालसा का उद्धार करेगा। उन्होंने यह भी कहा था कि वह अभी तक कुमार है।

(मुसकराहट)

ऋतुध्वज—(मुसकराकर) अच्छा ! और देवि तुमने अपना परिचय तो दिया ही नहीं।

कुण्डला—मेरा परिचय पाने की कोई क्यों इच्छा करने लगा ! मै एक बुझता हुआ चिराग हूँ, मुरझाई हुई कली हूँ। संसार से मेरा अधिक सम्बन्ध नहीं।

ऋतुध्वज—परिचय छिपाने से भी जब छिप न सकेगा, तो यह गोपन क्यों ?

कुण्डला—मुझ में छिपाने योग्य कुछ भी नहीं। मेरा नाम कुण्डला है। मदालसा से मेरा बहनापा है। गन्धर्वराज के प्रधान मन्त्री विंध्यमान मेरे पिता हैं। मेरे स्वामी का नाम पुष्करमाल था। वह एक राक्षस से युद्ध करते हुए वीर-गति पा गये।

ऋतुध्वज—आह, तुम्हारा परिचय पाकर दुःख होता है ! विधाता...

कुण्डला—(ठंडी साँस लेकर) किसी को दोष देने से क्या लाभ ? उसकी चर्चा ही व्यर्थ है। (बात बदल कर) अच्छा, तुम ने अपना परिचय तो दिया ही नहीं।

ऋतुध्वज—मैं अयोध्या का युवराज ऋतुध्वज हूँ। महर्षि गालव अपने आश्रम की रक्षा के लिये मुझे ही लाये थे। पाताल-केतु का पीछा करते हुए मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ कि तुम्हारे और तुम्हारी सखी के दर्शन मिले।

कुण्डला—इसमें भी विधाता का हाथ है।

ऋतुध्वज—(सहसा चौंककर) अरे बड़ा विलम्ब हो गया। अच्छा देवी, क्षमा कीजिये। पातालकेतु का अन्त किये बिना विश्राम कहाँ ? जाता हूँ। जीवित रहा तो फिर दर्शन करूँगा।

(प्रस्थान)

मदालसा—चले गए, सखी, बड़ी जल्दी चले गए।

कुण्डला—जब तक पातालकेतु जीवित है और तू उसके बन्धन में है, तब तक उनके जाने में ही हित है, ठहरने में नहीं।

मदालसा—पुरुष कर्तव्य के सामने किसी के सुख-दुख की चिंता नहीं करते। कितने नीरस होते हैं ?

कुण्डला—नहीं, इस नीरसता और कठोरता में कितना रस है इसे नारी नहीं जानती। हिमालय के अंतस्तल से गंगा-यमुना सी सहस्रों धाराएँ फूट निकलती हैं, जिन धाराओं के तट पर लोग तीर्थ बसाते हैं।

मदालसा—तेरी सारी बातें विलक्षण होती हैं, सखी ! तू जो न कहे थोड़ा ! पर यह तो बता, तेरी उनकी क्या कोई पुरानी पहचान है, जो उनका इतना पक्ष लेती है।

कुण्डला—हाँ, उन की छठी के दिन मैं अपनी माँ के साथ अयोध्या में गीत गाने गई थी (हँसती है, मदालसा भी हँसती है) हाँ, देख तो सही इसी तरह हँसी-खुशी में दिन बिताया कर। जो संकट कुछ ही दिन का है उसे हँस-खेल कर ही काट देना चाहिये। जी न जाने कैसा-कैसा हो रहा है। अच्छा तो यहीं बैठ, मैं अभी आती हूँ। (प्रस्थान)

मदालसा—अभागी कुण्डला के हृदय का हाल कोई पूछे। दिन-रात कलेजे में एक ज्वाला-मुखी छिपाए रहती है और दूसरों से हँस-हँस कर कहती है, उदास मत रहा करो। आह, इससे करुण, इससे दयनीय-जीवन किसका होगा? जिस प्रेम की अनुकूल वेदना से मैं घड़ी भर में पागल-सी हो गई, उसी प्रेम की प्रतिकूल वेदना जीवन भर कलेजे से लगाए यह बेचारी हँसी का अभिनय कैसे करती होगी। उफ़ (कुछ रुक कर) मुझ से कहती है, उदास न हो। मैं बहुत यत्न करती हूँ कि उदास रहकर इसे दुखी न करूँ, पर हृदय पर बस हो तब न! एक घड़ी में क्या से क्या हो गया। हृदय में न जाने क्यों एक वेदना-सी उठती है।

(गान)

हृदय क्यों होता आज अधीर।
बरबस भर भर आता है क्यों
इन नयनों में नीर।
लहरें उठती हैं मानस में,
नूतन नर्तन है नस—नस में,
आज क्षितिज की ओर देखकर

उठती है क्यों पीर ?

हृदय क्यों होता आज अधीर

अम्बर की ऊषा-लाली में

भरा हुआ है मद प्याली में !

आँखें झपती हैं सपने-सी-

दिखती है तसवीर !

हृदय क्यों होता आज अधीर

(कुण्डला का प्रवेश)

कुण्डला—अरे फिर वही ! एक न एक करुणा-गान ! कलेजे की कसक, हृदय की पीर, और ठण्डी साँसों का सारा कोष, क्या तू अकेली ही ख़ाली कर देगी।

मदालसा—आगई सखी, राजकुमार का कोई समाचार मिला ?

कुण्डला—राजकुमार की इतनी चिन्ता क्यों ?

मदालसा—किसी भले आदमी की चिन्ता करना पाप है ?

कुण्डला—नहीं परम पुण्य ! तू बुरा मान गई ? पगली कहीं की ! देख, राजकुमार ऋतुध्वज शीघ्र लौटेंगे ! तू इतनी चिन्ता क्यों करती है ?　　　　(ऋतुध्वज का प्रवेश)

ले, आ ही गये (कुमार से) आपका प्रण पूर्ण हुआ ?

ऋतुध्वज—तुम्हारे आशीर्वाद से। पातालकेतु के भार से पृथ्वी मुक्त हो गई ?

कुण्डला—फिर भी अपने को सुरक्षित न समझो। उसका भाई तालकेतु उससे भी अधिक मायावी है ! भाई की मृत्यु की खबर सुन वह अभी आ पहुँचेगा।

ऋतुध्वज—उसे भी अभी मौत के घाट उतारता हूँ। सत्य और न्याय के प्रकाश के आगे छल, कपट और माया कब तक ठहर सकती है। (गमनोद्यत)

कुण्डला—पर ज़रा ठहरो तो ? मेरा आपके विरुद्ध एक अभियोग है !

ऋतुध्वज—(रुक कर) अभियोग; मेरे विरुद्ध ! कहिए, देवि, मैं प्रस्तुत हूँ ! क्या अभियोग है ?

कुण्डला—अभियोग यही कि तुम पातालकेतु से भी अधिक मायावी हो। तुम ने........

ऋतुध्वज—मैंने ! क्या किया है मैंने !

कुण्डला—तुमने एक बहुत बड़ा अपराध किया है। वह यह कि तुमने एक निराश जीवन में आशा का ज्वार उठाया है।

ऋतुध्वज—उसका दण्ड !

कुण्डला—उसका दण्ड है विवाह-बंधन में जकड़ जाना ! समझे !

ऋतुध्वज—वैसे—मुझे—कोई—आपत्ति तो नहीं—पर पिता जी की आज्ञा।

(नारद का प्रवेश)

नारद—ब्याह तुम अपना कर रहे हो या अपने पिता का। अरे भाई सफ़ेद दाढ़ी वालों से अपना जीवन-संगी निर्वाचित करवाना घसियारे से मोती परखवाना है ! कैसी बातें कर रहे हो तुम ! ऐसी कन्या त्रिभुवन में चिराग लेकर ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगी; त्रिभुवन में !

बाप—बेटे दोनों ठोकरें खाते फिरा ही करना ! लाओ, अपना हाथ ! हृदय मिलाओ तुम और हाथ मिलाने अयोध्या से तुम्हारे पिता जी आयें। अरे बाबा, अगर बुड्ढे के बिना सगुन ही बिगड़ता हो तो लो मैं बुडढा मौजूद हूँ। दाढ़ी-दाढ़ी सब एक-सी !

(हाथ मिला देता है)

अच्छा, अब फूलो, फलो, खाओ, खेलो, दुनिया का कल्याण करो !

(प्रस्थान)

कुण्डला—मैं भी जाती हूँ, सखी ! मेरे जीवन की साधना सफल हुई। अब केवल तीन अन्तिम सीढ़ियाँ और हैं—तीर्थ-यात्रा, तपस्या और मृत्यु ! (कुमार से) कुमार, तुम वीर और बुद्धिमान हो, फिर भी मोह-वश कुछ कहती हूँ। जिस पुरुष को स्त्री का प्रेम और सहायता सुलभ है, वही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है ! संसार के जितने वाञ्छनीय पदार्थ हैं उनका आधार दाम्पत्य जीवन ही है। जिस दम्पत्ति में अटल प्रेम होता है उसके आगे संसार के समस्त सुख हाथ बाँधे खड़े रहते हैं। जिस पुरुष के घर में धर्मशीला स्त्री नहीं होती, उसके घर में अतिथि-सेवा, आश्रितों का पालन तथा अन्य धार्मिक कार्य्य नहीं होते। सब प्रकार के सुखों की खान लक्ष्मी-स्वरूपा पत्नी को आदर और स्नेह पूर्वक रखना चाहिये। मेरी शुभ कामना तुम्हारे साथ है। ऐं यह क्या राक्षस-दल की आवाज़ निकट आ गई है। कुमार, चलो, शीघ्रता करो, शीघ्र वायुयान पर बैठ कर चलो।

(कुण्डला, ऋतुध्वज और मदालसा का प्रस्थान)

(नेपथ्य में कोलाहल)

पकड़ना-पकड़ना ! मदालसा को शत्रु लिये जा रहे हैं।

(तालकेतु का प्रवेश)

ताल०—निकल भागा धूर्त ! मायावी कपटी हत्यारा । यह अपमान असह्य है, अक्षम्य, है । भाई पातालकेतु ! तुम्हारा बदला आर्यजाति से चुकाऊँगा । सारे आर्यावर्त को श्मशान बना डालूँगा ।

(प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

तीसरा अंक

दृश्य १

[अयोध्या के राजमहल में मदालसा]

मदालसा—(गाती है)

आँखों का यह कालापन,
बरसे बन आँसू के कण !
करदे जग का मन पावन,
बरसो ओ सावन के घन !

मन मयूर करता नर्तन,
घिर आए हैं जीवन-घन,
कहती चातक की चितवन,
बरसो शीघ्र स्वाति के कण !

यह देश गन्धर्वपुरी से भी अधिक सुन्दर और मोहक है। विहगों के कलरव में जितना आनन्द यहाँ है, उतना वहाँ भी न था। विभव और विनय का ऐसा सम्मिलन कहाँ! यह देव-लोक से भी सुन्दर है! प्रियतम के स्नेह ने इस सौन्दर्य्य को और भी मोहक बना दिया है। इतना दुःख सहने के पश्चात इतना सुख सहसा सम्हाला जा सकेगा! आज भी पातालपुर के पैशाचिक काण्ड की याद आते ही हृदय काँप उठता है। उसकी काली छाया अभी तक हृदय से नहीं हटी है। यद्यपि पातालकेतु मर चुका है, परन्तु उसका भाई तालकेतु उससे भी अधिक मायावी है—पिशाच है। वह शान्त कैसे रहेगा?

(ऋतुध्वज का प्रवेश)

ऋतुध्वज—क्या विचार कर रही हो?

मदालसा—तुम आँखों के आगे से ज़रा भी हटते हो कि मैं व्याकुल हो उठती हूँ। इच्छा होती है कि मैं छाया-सी सदा साथ रहूँ।

ऋतुध्वज—हृदयेश्वरी, ज़रा मेरे हृदय में देखो, तुम अलग कहाँ हो। क्या अब भी अन्तर शेष है! मैं तुम्हें पाकर कितना सुखी हुआ हूँ।

मदालसा—मैं क्या निहाल नहीं हुई हूँ। जीवन की समस्त साधना, आशा, अभिलाषा तुम्हें पाकर निहाल हुई हैं! फिर भी हृदय में एक आग-सी क्यों जलती रहती है? जब खिड़की खोल कर नीले आकाश की ओर देखती हूँ, तो ऐसा जान पड़ता है जैसे उसमें कोई पिशाच मुँह फाड़ रहा है। ऐसे स्नेहशील सास-ससुर और ऐसा सहृदय पति पाकर भी अशांति किस लिये?

ऋतुध्वज—यह कुछ नहीं केवल अतीत का स्मृति-दंशन है। उसे विस्मृति के महासिंधु में विलीन कर दो! जैसे मैंने तुम में दीन-दुनिया को भुला दिया है, उसी प्रकार तुम भी मुझ में सब कुछ भूल जाओ। दुःख की कल्पना करके क्यों विभीषिका खड़ी करती हो? तुम्हें कुछ अभाव है?

मदालसा—सकल भावनाओं की मूर्ति, तुम्हें पाकर कैसा अभाव? ये सुख के दिन अजर-अमर बने रहें! मैं तो यही चाहती हूँ।

(शत्रुजित का प्रवेश, ऋतुध्वज और मदालसा चरण छूते हैं)

शत्रुजित—आज मैं असमय आया हूँ! क्षमा करना! मैं तुम्हारे आनन्द में बाधा नहीं देना चाहता। तुम दोनों को देखकर मेरे हृदय को शांति प्राप्त होती है। परन्तु केवल आनन्द ही तो जीवन का लक्ष्य नहीं है। कभी भी हमें कर्तव्य के कठोर पथ को नहीं भूल जाना चाहिये।

ऋतुध्वज—महाराज के आज्ञाकारी पुत्र के चरण ऐसे निकम्मे नहीं हैं, जो कर्तव्य के कठोर पथ पर चलने से कष्ट पावें। पिताजी, आप कैसी आशंका करते हैं। संसार की सेवा के लिये सम्पूर्ण सुखों का बलिदान करने के लिये रघुकुल की सन्तान सदा तैयार है और रहेगी!

शत्रुजित—अयोध्या के राजकुमार से यही आशा है, जो काँटों का ताज मेरे और तेरे सिर पर रखा हुआ है उसकी मान-मर्यादा रखना कठिन है। उसमें अभिमान, आलस्य, विलास, प्रमाद और पापाचार से कलंक लगता है। जब दुष्टों के दमन, दीन-दुखियों की रक्षा तथा देश

की व्यवस्था के लिये राजमुकुट अपने सिर पर धारण किया है तो हमें कर्तव्य-पालन करना ही चाहिये। न कर सकें तो जनता के चरणों पर राजमुकुट रख कर, राज-सिंहासन से बिदा लेना ही हमें उचित है।

ऋतुध्वज—रघुकुल ने राजमुकुट की मर्यादा सदा रखी है। आपकी बातों का तात्पर्य्य !

शत्रुजित—इन दिनों राक्षसों के उत्पात फिर प्रारम्भ हो गये हैं। यदि उनकी शक्ति को निर्मूल नहीं किया गया तो देश और धर्म दोनों ही संकट में पड़ेंगे।

ऋतुध्वज—अवश्य !

शत्रुजित—तुम कुबलय वायुयान पर चढ़ कर जाया करो, और इनकी हलचलों की देख-भाल किया करो, तथा इनके प्रयत्नों को व्यर्थ करने का प्रयास करते रहा करो।

ऋतुध्वज—आपकी आज्ञा का पालन होगा !

शत्रुजित—तुम कुल और देश का मुख उज्ज्वल करो।

(प्रस्थान)

ऋतुध्वज—प्रिये, प्रसन्नता से बिदा दो।

मदालसा—न जाने क्यों, मेरा हृदय अधिक दुर्बल हो गया है। तालकेतु बड़ा पिशाच है, मायावी है। क्या तुम अपने स्थान पर सेनापति को नहीं भेज सकते।

ऋतुध्वज—क्षत्रिय को क्या भय ? क्या तुम नहीं सोचती हो, कि ये दुष्ट स्त्री-पुरुषों पर कितना अत्याचार करते हैं ! मेरे पैरों में मोह-ममता की जंज़ीर मत कसो। यदि तुम्हारी शुभ-कामना में कुछ भी शक्ति है तो कोई मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता ?

मदालसा—आज मेरा हृदय बहुत भयभीत हो रहा है, आज तुम मत जाओ !

ऋतुध्वज—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। केवल आनन्द में लिप्त रहने से यह राज्य स्थिर नहीं रह सकता।

मदालसा—मुझे भी रण में ले चलो !

ऋतुध्वज—तुम्हें संकट में नहीं डालना चाहता। तुम्हारी शुभ कामना ही मेरा कवच बन कर जाय, वही बहुत है। तुम्हारी शोभा महल में ही है रणभूमि में नहीं ! तुम रूप की उर्वशी हो, महाकाली नहीं। गन्धर्वपुरी रूप और सङ्गीत के लिये प्रसिद्ध है, पौरुष के लिये नहीं।

मदालसा—तुम मेरे देश का और मेरा अपमान करते हो।

ऋतुध्वज—नहीं, प्रिये ! तुम्हें विधाता ने जो कुछ दिया है, वही अभिमान की चीज़ है। तुम्हारी गन्धर्वपुरी विश्व-विजयी है। शस्त्र से नहीं—संगीत से !

मदालसा—आज न जाओ तो क्या बुराई है ?

ऋतुध्वज—एक दिवस का विलम्ब भी घातक है !

मदालसा—अच्छा, जाओ प्रियतम ! परन्तु, तालकेतु की माया से बचना। वह तरह-तरह के असत्य सम्वाद फैलाकर लोगों को कपट-जाल में फँसाने का प्रयत्न करेगा। तुम्हारे विषय में भी असत्य समाचार फैलावेगा ! मैं तुम्हारी बाहु में यह मणि बाँधे देती हूँ, इसकी अपने हृदय की तरह रक्षा करना। जब मैं इसे देखूँगी और तुम्हें न देखूँगी तो सम्भव है प्राण देदूँ ! (मणि बाँध देती है)

ऋतुध्वज—यह मणि कोई प्राणान्त के बाद ही पा सकेगा।

प्रिये, चिन्ता न करो। अपनी शुभकामना और मेरे सामर्थ्य पर विश्वास करो।

मदालसा—जाओ, प्रियतम! भगवन् तुम्हारी रक्षा करे! यह मोह है जो तुम्हें बाँध कर रखना चाहता है! जाओ, हृदयेश्वर तुम संसार को पाप-मुक्त करो।

ऋतुध्वज—तालकेतु यदि अपनी शक्ति बढ़ाता रहा तो एक दिन आर्य्यावर्त को उसका दास होना पड़ेगा। उसका मस्तक अभी चूर कर देना उचित है। इतने दिवस निश्चिन्त रहना भी मूर्खता थी।　　　　　　　　　(प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

———

दृश्य २

[पाताल का राजमहल]

ताल०—हृदय में प्रतिहिंसा की ज्वाला जल रही है। ऋतुध्वज तूने पातालकेतु की हत्या करके एक विपत्ति मोल ले ली है। भोले भाले आर्य्य हमसे बल में, पौरुष में भले ही श्रेष्ठ हों, परन्तु छल में, माया में हमारा सामना कौन कर सकता है। ऋतुध्वज, तुझे आजन्म चिंता की ज्वाला में जलाऊँगा, यही मेरा प्रतिशोध है! मयदानव अभी तक आया नहीं। मेरे गुप्तचरों ने सूचना दी है, ऋतुध्वज फिर युद्ध के लिये निकल पड़ा है। प्रस्थान के समय मदालसा ने अपनी मणि उसे दी है और कहा है कि जब इस मणि को देखूँगी और तुम्हें न देखूँगी तो सम्भव है मेरे प्राण निकल जायँ। वही मणि हस्तगत करनी चाहिए।

(मयदानव का प्रवेश)

मयदानव—महाराज की जय हो!

तालकेतु—आज आपकी विशेष आवश्यकता है। कहिये आप के वैज्ञानिक आविष्कारों ने कहाँ तक प्रगति की है?

मय०—विज्ञान में, भौतिक विद्या में कोई देश हम से आगे

नहीं निकल सकता। बहुत विचार और प्रयोग के पश्चात् मैं इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि सृष्टि की प्रत्येक वस्तु—जड़ और चेतन-विविध अणु-परिमाणुओं के सम्मिलन से बनी है। जीव नाम की कोई पृथक् वस्तु नहीं। सब कुछ इसी प्रकृति से उत्पन्न हुआ है, इसी में समा जायगा।

तालकेतु—क्या तुम मनुष्य-देह बना सकते हो, क्या उसमें प्राण डाल सकते हो ?

मय०—मनुष्य-काया बनाने में मुझे सफलता मिली है। मैं आप जैसी शरीर-यष्टि निर्माण कर सकता हूँ। सहस्र आँखों वाला भी उसे नकली नहीं कह सकता। केवल प्राण डालने में मुझे सफलता नहीं मिली है।

ताल०—मैं तुम्हारी परीक्षा लेना चाहता हूँ। तुम जानते हो अयोध्या का राजकुमार ऋतुध्वज भाई पातालकेतु की हत्या करके मदालसा को उड़ा कर ले गया और उसने उससे विवाह कर लिया है। तुम्हें मेरे गुप्तचरों के साथ अयोध्या जाना होगा। वहाँ मेरे गुप्तचरों की सहायता से मदालसा के तुम दर्शन कर सकते हो। उसकी जैसी काया तुम्हें निर्माण करनी होगी।

मय०—उससे आपका क्या अभिप्राय सिद्ध होगा ?

तालकेतु—प्रतिशोध ! मदालसा का हरण कर वहाँ वह माया की मदालसा छोड़ आनी होगी। वे मूर्ख समझेंगे मदालसा मर गई है। ऋतुध्वज भी उसके वियोग में मर जायेगा या पागल हो जायगा। पातालकेतु की हत्या का यही प्रतिशोध है।

मय०—केवल कौतूहल के लिये ही सही, मैं आपकी सहायता

करूँगा। मेरे आविष्कारों का यह उपयोग होगा, यह मैं ने सोचा न था। आपका षड्यन्त्र सफल होगा। आज्ञा दीजिये।

तालकेतु—आवश्यक वस्तुएँ लेकर वायुयान द्वारा आप अयोध्या चलिये। मेरे गुप्तचरों को भी लेजाइए! मैं बाद में आऊँगा।

(मयदानव का प्रस्थान)

अब ऋतुध्वज को छलने का प्रयत्न करना है! मेरी युद्ध-नीति कैसी है, इसे भी आर्य लोग जान लें। आर्य-जाति, तुझ में आवश्यकता से अधिक धर्म और परोपकार-बुद्धि है—वही तुझे अधिकाधिक संकटों में डालती है। (प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

———

दृश्य ३

[वन में तालकेतु ब्राह्मण के वेश में]

ताल०—ऋतुध्वज, तुम ने समझा होगा, पातालकेतु का अन्त करके संसार से राक्षस-शक्ति का नाश कर दिया। एक वीर के मर जाने से ही एक राज्य या एक शक्ति का नाश नहीं होता। तुम मुझ से अधिक शक्तिशाली नहीं हो। भाई की मृत्यु का बदला चुकाया जायगा। मेरे गुप्तचर समस्त संसार में फैले हुए हैं, तेरा महल भी उससे ख़ाली नहीं है। भोले-भाले बहादुर तू मायावी राक्षस से पार नहीं पा सकता। रण में तुम से विजय पाना सरल नहीं; इस लिये छल से ही काम लेना होगा। बैरी से छल न करना मूर्खता है। ऋतुध्वज आता है। वैदिक धर्म की रक्षा करने वाले तुम्हारी रक्षा कौन करेगा। अब तपस्वी की मुद्रा में बैठ जाना चाहिये।

(ध्यान-मग्न बैठ जाता है, ऋतुध्वज का प्रवेश)

ऋतुध्वज—ऋषिवर, मैं चरणों में प्रणाम करता हूँ।

तालकेतु—यशस्वी हो, बेटा। बैठो, मुझे तुमसे कुछ पूछना है।

ऋतुध्वज—तपस्वियों की सेवा के लिये क्षत्रिय कभी न नहीं कह सकता।

ताल०—मेरे भाग्य में बड़ा दुःख बदा है। हाय!

ऋतुध्वज—आप दुखी क्यों हैं। मुझ से कहिये सम्भव है कि कुछ कर सकूँ।

ताल०—मैं एक ब्राह्मण हूँ। मेरा नाम अतितेजी है। एक ब्राह्मण की परम सुन्दर कन्या से मेरे पुत्र ने विवाह किया है।

मेरा पुत्र उस पर जान देता है। वह युवती बड़ी निष्ठुर है। मेरे एक ही तो बेटा है। हाय ! (आँखों में अश्रु भर लाता है)

ऋतुध्वज—इस प्रकार रोते क्यों हो, पूरी बात तो कहिये।

ताल०—मेरे पुत्र की प्राण-रक्षा नहीं हो सकती। वह बड़ी हठीली है। अपने रूप के मोह-जाल में फँसाकर मेरे पुत्र की, मानो, हत्या ही कर डालना चाहती है। उसकी इच्छाएँ पूर्ण करते-करते मैं और मेरा पुत्र दोनों थक गये। मैं ऋषि हूँ, लेकिन रंक हूँ। वह जो कुछ चाहती है, कहाँ से दूँ।

ऋतुध्वज—वह क्या चाहती है ? सम्भव है मैं आपकी सहायता कर सकूँ।

ताल०—मुझे अयोध्या के राजकुमार ऋतुध्वज के महल का पता बता दीजिए। वहाँ जाने का मार्ग और उपाय बता दीजिए।

ऋतुध्वज—उससे क्या काम है ?

तालकेतु—वह हठीली कहती है, मुझे मदालसा की मणि लादो। उसका विवाह ऋतुध्वज के साथ हुआ है। यदि न लाओगे तो मैं प्राण दे दूँगी। यदि उसने प्राण दिये तो पुत्र भी जीता न रहेगा। उसके मर जाने पर मेरा क्या हाल होगा। राजकुमार, ऋतुध्वज की ज़रा-सी कृपा से एक ब्राह्मण-कुल का नाश होने से बच जायगा। प्रेम कितना अंधा होता है !

ऋतुध्वज—दास का ही नाम ऋतुध्वज है ! परन्तु, वह मणि मैं नहीं दे सकता। मुझे तुम्हारे ऊपर दया तो आती है, परन्तु प्रेम अंधा होता है। मैं मदालसा की मणि एक घड़ी भी अलग नहीं कर सकता।

ताल०—तुम्हारी ज़रा-सी दया से एक ब्राह्मण-कुल की रक्षा हो सकती है।

ऋतुध्वज—मेरे कुल का तो सर्वनाश हो सकता है !

ताल०—क्यों ?

ऋतुध्वज—मदालसा इस मणि को मुझ से अलग देखेगी तो प्राण दे देगी।

ताल०—मणि उसके पास तक कैसे पहुँचेगी। एक ब्रह्मर्षि का विश्वास करो, मदालसा को इसका पता भी न लगेगा। काम होते ही दो-तीन दिन में उसे लौटा जाऊँगा।

ऋतुध्वज—मणि देते हुए कलेजा काँपता है, प्राण निकलते हैं।

ताल०—तो क्या रघुकुल की कीर्ति मिथ्या है। जो परोपकार के लिये राज-पाट, वैभव, घर-कुटुम्ब, स्त्री-पुत्र सबको त्याग सकता है, क्या तुम उसी रघुकुल में जन्मे हो। कैसा घोर पतन है ! नहीं तुम ऋतुध्वज नहीं हो ! मैं उसके दरवाज़े पर जाकर प्राण देदूँगा !

ऋतुध्वज—लो दुखी ब्राह्मण, मैं यह मणि देता हूँ। (बाहु से खोलकर मणि देता है) मेरे और मदालसा के प्राण तुम्हारे काबू में हैं। रघुकुल का परोपकार के लिये ही पृथ्वी पर अस्तित्व है !

ताल०—(मणि लेकर) धन्य हो कुमार ! तुम्हारा यश त्रिलोक में फैले। रघुकुल की जैसी कीर्ति सुनी थी, उसे वैसा ही पाया। तीन दिन बाद मैं तुम्हें यह मणि इसी स्थान पर दे जाऊँगा।

(प्रस्थान)

ऋतुध्वज—मणि दे तो दी, परन्तु हृदय बाहर निकला जाता है, कलेजा जैसे फटा जाता है। हायरे परोपकार के दंभ ! हाय री

रघुकुल की कीर्ति ! हाय री दान-शीलता ! हाय रे कठोर कर्तव्य, क्या तुमने प्रेम के लिये स्थान नहीं रखा। तुम्हारे लिये मेरे जीवन का सुन्दरतम सहारा, विश्व-कामना का धन, प्रियतमा मदालसा के प्राण संकट में डाल दिये हैं। क्या मैं उसके प्रति सच्चा हूँ।

(प्रस्थान, तालकेतु का प्रवेश)

ताल०—अच्छा, ऋतुध्वज चला गया ! मिल गई ! मदालसा, तेरी चोटी मुझे मिल गई। ऋतुध्वज अब तुम मेरे अधिकार में हो ! प्रतिशोध ! तुम तालकेतु से नहीं जीत सकते !

(प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

———

दृश्य ४

(अयोध्या का राजमहल)

शत्रुजित—ऋतुध्वज, लौट कर नहीं आया है । बड़ी चिन्ता हो रही है !

महारानी—आप भी उसे रात-दिन युद्ध ही युद्ध में निरत रखते हैं !

शत्रुजित इन आतंककारियों से देश की रक्षा तो करनी ही पड़ेगी । धर्म की रक्षा करनी ही चाहिए !

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—(अभिवादन के पश्चात्) महाराज, एक ब्राह्मण आप से बहुत आवश्यक बात कहना चाहता है !

शत्रुजित—उसे यहीं भेज दो । (द्वारपाल का प्रस्थान)

महारानी—सम्भव है, वह ऋतुध्वज का ही समाचार लाया हो । आज जी उदास क्यों हो रहा है ! (तालकेतु का प्रवेश)

शत्रुजित—कहो, क्या कहना है ?

तालकेतु—महाराज. कहते हुए हृदय काँपता है ! आप धन्य हैं, जो ऐसे वीर पुत्र का पिता होने का सौभाग्य पाया है !

शत्रुजित—इन पहेलियों का क्या अर्थ ! ऋतुध्वज कुशलपूर्वक तो है ?

ताल०—महाराज, उन्होंने मेरे आश्रम पर तालकेतु आदि राक्षसों से युद्ध करते हुए वीर-गति पाई है ! सहस्रों राक्षसों ने अकेले कुमार को घेर लिया । शव की दाह-क्रिया हमने आश्रम में ही कर दी है ! यह मणि उनकी भुजा में बँधी हुई थी !

महारानी—हे भगवान्, तू कितना निष्ठुर है ! मेरे लाल, मेरी आँखों के तारे, मेरे हृदय के उजियारे, तू हृदय में आग लगाकर कहाँ चला ? तू माँ को छोड़ कर क्यों चला गया ! अब जीवन में क्या सुख है ? क्या यही भयानक दृश्य दिखाने विधाता ने मुझे जीवित रखा था ! आह, कलेजे के टुकड़े होते हैं।

(मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है)

शत्रुजित—मैंने कौन-सा पाप किया था जो इस बुढ़ापे में यह बज्राघात सहन करना पड़ा । क्या विधाता रघुकुल का नाश ही चाहता है। तालकेतु ! तालकेतु ! जी चाहता है तेरा मस्तक चूर-चूर कर दूँ । भगवान् आर्य्यावर्त पर तुम्हारी कृपा का हाथ नहीं रहा ! पुण्य पर पाप की विजय हो रही है ! आह, पुत्र ! ऋतुध्वज ! ऋतुध्वज !! मेरे जीवन का आधार, रघुकुल का सूर्य, तू अस्त हो गया। तू हमें घोर अंधकार में अकेला छोड़ गया !

(अश्रुपात करते हुए, सिर पर हाथ रख कर बैठ जाते हैं)

ताल०—राजन् बुद्धिमान होकर आप इतना दुःख करते हैं ! आज तो प्रसन्नता का दिन है, गौरव से फूल उठने का दिन है। आपके वीर पुत्र ने धर्म की रक्षा के लिए प्राण दिये हैं। क्षत्रियों की छाती तो इतनी कड़ी होनी चाहिए कि ऐसे दुःखों के पहाड़ सहन करने को सदा तय्यार रहे।

शत्रुजित—तुम सत्य कहते हो। आज गौरव का दिन है। आज रघुकुल का अन्त हो रहा है और गौरव का दिन है । मर कर मेरा पुत्र अमर हो गया, उसे मरने भेज कर मैं भी अमर हो गया। उसने धर्म के लिये प्राण दिये। रघुकुल के राजकुमारों को यही

शोभा देता है ! मृत्यु तो क्षत्रियों की सेज है। परन्तु, भू-देव, हृदय को कैसे समझाऊँ ! यह फटा जा रहा है ! अब किसी प्रकार प्राण-रक्षा संभव नहीं !

महारानी—(अर्धचेतन अवस्था में) आओ, बेटा, आओ ! अपनी माँ से क्यों रूठते हो ! मैं स्वप्न में भी तुझ से अप्रसन्न नहीं हुई। आओ, मेरे दुलारे, कहाँ जाते हो ! माँ की गोद से अधिक सुख तुम्हें कहाँ मिलेगा। गालव, गालव, तुमने मेरे बेटे को किधर कर दिया। लाओ-लाओ ! तुम्हें मेरा पुत्र मुझे सौंप देना चाहिये। धर्म डूबता है, डूब जाय ! मुझे मेरा पुत्र दे दो ! तालकेतु ! तालकेतु ! तू अपनी तलवार रोक ले। यह अयोध्या का राज्य ले-ले। ऋतुध्वज ! ऋतुध्वज ! (मूर्च्छित)

ताल०—महारानी विक्षिप्त हो गई हैं। उन्हें सम्हालिए !

शत्रुजित—हो जाने दो, आज सब समाप्त हो जाने दो। अयोध्या तू सरजू के जल में डूब जा ! ऐ महल तू मेरे ऊपर टूट पड़। मदालसा ! मदालसा !! तुझे यह समाचार कैसे सुनाऊँ ?

(मदालसा का प्रवेश)

मदालसा—यह हाहाकार कैसा ?

शत्रुजित—यह मणि ले। ऋतुध्वज आज निर्मोही होकर चला गया।

मदालसा—हाय, विधाता तू बैरी हो गया ! मेरे भाग्य में सुख नहीं। हे प्राणनाथ, यदि इस प्रकार रूठ कर चले जाना था, तो पातालपुरी से उद्धार ही क्यों किया था। तुम्हारा प्रेम और उपकार भी आज बैर जान पड़ता है ! तुम निर्मोही होकर—साथ छोड़ दे

सकते हो, परन्तु मैं कैसे छोड़ूँ ! आती हूँ, प्राणनाथ, मैं भी आती हूँ ! जन्म-जन्मान्तर मैं तुम्हारे साथ रहूँगी ! प्रेम ने जो प्रबल पाश कस दिया है—वह ढीला नहीं हो सकता, टूट नहीं सकता ! मैं आज रोऊँगी नहीं। इस दुख-पूर्ण संसार से हम दोनों ही बिदा लें ! वह देखो, प्रियतम मुझे बुला रहे हैं। भला, वह मेरे बिना कैसे रह सकते हैं। मैं आती हूँ। (मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है।)

शत्रुजित—सब समाप्त है ! बेटा गया ! रानी, पुत्रवधू, मैं सब समाप्त होने वाले हैं। यह दुःख कौन सह सकता है। क्षत्रिय का कठोर हृदय ! (हृदय पर आघात करते हैं) तू अभी तक चूर नहीं हुआ ! युद्धों में सहस्रों हत्याएँ की हैं। आज ज्ञात हुआ, युद्ध कितना कठोर कार्य है। सूर्य-वंश आज तेरा अन्त है। ऋतुध्वज ! ऋतुध्वज !! बेटा ! बेटा ! तेरे बिना... । (मूर्च्छा)

ताल०—बस, यही उपयुक्त समय है। राजा, रानी, मदालसा तीनों मूर्च्छित हैं। अहाहा, क्या आनन्द है। प्रतिशोध ! मयदानव ! मयदानव !! आह, इतनी देर क्यों ! लाओ शीघ्र मदालसा का माया का शरीर।

(मयदानव माया की मदालसा लेकर आता है)

मयदानव—मैं उपस्थित हूँ।

ताल०—शीघ्रता करो ! मूर्च्छित मदालसा को ले चलो। माया की काया छोड़ दो !

(मयदानव और तालकेतु माया की मदालसा को शयन करा कर, मदालसा को उठा ले जाते हैं।)

(पट-परिवर्तन)

———

दृश्य ५

[श्मशान ! मदालसा की चिता जल रही है। शत्रुजित, महारानी, मन्त्री, तथा अन्य कर्मचारी और पुरजन]

शत्रुजित—आज एक साथ ही पुत्र और पुत्र-बधू दोनों को खो दिया। आज मेरी दोनों आँखें फूट गई हैं। चारों ओर घोर अंधकार है, और है तीव्र ज्वाला ! इस चिता की ज्वाला से भी अधिक भयङ्कर चिता मेरे हृदय में जल रही है। मंत्री जी, आज मुझे भी बिदा दीजिये। राज-महल भी मेरे लिये श्मशान है। यह शरीर केवल कारागार है। शत्रुजित अब शत्रुजित नहीं, शत्रुजित का शव है। अब संसार से मेरा क्या नाता ?

महारानी—(रोती हुई) बेटा ऋतुध्वज ! बेटी मदालसा, चाँद का टुकड़ा ! मेरा ऐसा भाग्य कहाँ जो तुम्हें सम्हाल कर रखती। मुझे भी इसी चिता में जला दो ! चिता ! तू खूब जल ! धू-धू-धू ! भयङ्कर लपटों में खूब जल। ज़मीन आसमान सब को भस्म कर दे ! ऋतुध्वज ! ऋतुध्वज ! मदालसा !! मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी (मूर्च्छा)

शत्रुजित—मनुष्य के हृदय में इतना प्रेम दिया क्यों है। भगवन् ! जब छीन ही लेना था, तो इतना ऐश्वर्य, इतना सुख दिया ही क्यों ? मन्त्री मैं तुम्हारा स्वामी हूँ। मैं आज्ञा देता हूँ। तुम मेरा मस्तक काट लो ?

मन्त्री—राजन्, क्षत्रियों को ऐसा शोक शोभा नहीं देता। त्रिलोक में आपका मुख उज्ज्वल हो गया है ! ऐसा वीर पुत्र,

ऐसी सती पुत्र-वधू किस भाग्यवान को मिलती है। महाराज, वे मरे नहीं हैं, अमर हो गये हैं।

शत्रुजित—क्या कहा, वे मरे नहीं हैं, अमर हो गये हैं। हाँ अमर हो गये हैं। मन्त्री जी तुम सत्य कहते हो—वे मरे नहीं हैं, अमर हो गये हैं! ये बातें सुनने में मधुर हैं, परन्तु उनसे हृदय का घाव नहीं भरता, मेरे सूने महल की नीरवता दूर नहीं होती। इस बुढ़ापे में मैं उन्हीं का मुँह देख कर जीता था। वे अमर हो गये हैं, परन्तु हम मर गये हैं।

मन्त्री—नहीं राजन्, वे आपको भी अमर कर गये हैं। वे रघुकुल को अमर कर गये हैं। दोनों प्रेम और कर्तव्य के अवतार थे, उसी के लिये बलि हो गये।

शत्रुजित—मन्त्री, क्षत्रिय का कर्म बड़ा कठोर है, यह अब जाना। मैंने कितने युद्धों में कितने ऋतुध्वजों की हत्या की है, कितने शत्रुजितों के हृदय के टुकड़े-टुकड़े किये हैं। हाय ऋतुध्वज!

महारानी—(मूर्च्छा से जाग कर) हाँ, मदालसा! सुख का यही मार्ग है? तूने पति का साथ नहीं छोड़ा तो मैं भी पुत्र का साथ क्यों छोड़ूँ? आजन्म जिसे आँखों की पुतली बना कर रखा, क्या उसे माँ छोड़ देगी! नहीं कभी नहीं! छोड़ दो! मुझे छोड़ दो? ऋतुध्वज बुला रहा है। हाँ, चिता ज़रा और जलो। धू-धू-धू अहा हा! कैसा स्वर है। यही तो सुख की सेज है। (दौड़ कर चिता पर चढ़ना चाहती है, परन्तु दासी पकड़ लेती है) छोड़ दो! मैं भी इसी चिता में जलूँगी।

मन्त्री—महाराज, आप महारानी को सम्हालिए। चलिए अब

भवन लौट चलना उचित है। श्मशान दुःख को अधिक प्रज्ज्वलित कर रहा है। संसार नश्वर है। इसी श्मशान में करोड़ों ऋतुध्वज, मदालसा, और शत्रुजित एक हो गये ! न कोई पिता है न कोई पुत्र। यह केवल माया है—भ्रम है। आत्मा अमर है यह एक वस्त्र फेक कर दूसरा वस्त्र बदल लेता है।

शत्रुजित—यह तत्व-ज्ञान आज शान्ति नहीं देता। यह मोह भी अजर-अमर है ! यह दुख भी अजर अमर है ! न कोई मरता है न कोई जीता है। केवल आत्मा वस्त्र बदलती है तो मुझे भी वस्त्र बदल लेने दो ! मेरा वस्त्र तो ऋतुध्वज के वस्त्र से अधिक जीर्ण हो चुका है।

मन्त्री—राजन्, आपको कैसे सान्त्वना दूँ। मेरा हृदय भी इस दुख से फटा जा रहा है। लौट चलिये ? अब घर लौट चलिये!

शत्रुजित—चलो मन्त्री, कहीं भी चलो। मुझे तो सब जगह श्मशान है।

मन्त्री—वेदना में ही आनन्द है ! विधि के विधान को विनम्र होकर स्वीकार करना ही हमारे बस में है।

(सब का प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

दृश्य ६

[बन में ऋतुध्वज]

ऋतुध्वज—अभी तक ब्राह्मण लौटा नहीं है। मैंने मणि देकर भयंकर भूल की है। कहीं यह छल हो, प्रपञ्च हो! तब तो सर्वनाश है, घोर सर्वनाश है। परोपकार करने के अभिमान ने प्रेम का तिरस्कार किया है! हृदय में आज अशुभ विचार उठ रहे हैं! एक भय आँखों के आगे नृत्य कर रहा है। इस समय मैं मणिहीन सर्प हो रहा हूँ।

(ब्राह्मणवेश में तालकेतु का प्रवेश)

ऋतुध्वज—ब्रह्मदेव, आप आ गये! मुझे तो किसी अनिष्ट की आशंका हो रही थी।

ताल०—राजकुमार, ब्राह्मण असत्यवादी, कपटी, स्वार्थी और लोभी नहीं होते। संसार के समस्त ऐश्वर्य्य को त्याग कर लँगोटी लगाने वाले ब्राह्मण कुवेर की निधि के ऊपर भी नज़र नहीं डालते! ब्राह्मणों में जब तक निस्स्वार्थता है, तप-बल है, तेज है तब तक आर्य्यावर्त का संसार में मान है। हमने अपने हाथों से क्षत्रियों के मस्तक पर राजमुकुट रखा है। उनके हाथों में दण्ड दिया है, और स्वयं एक लँगोटी बाँध कर जंगल की ओर चले गये हैं। इन सांसारिक विभवों का हमें लोभ होगा, ऐसा विचार किसी के हृदय में क्यों उठता है! हमारी आँखें दूर—दुनियादारी से बहुत दूर, उस असीम, अनन्त, परमानन्द की ओर लगी हुई हैं! हम संसार की माया को मिट्टी का ढेला समझते हैं!

ऋतुध्वज—तभी तो आप के चरणों पर सम्राटों के मस्तक झुकते हैं। आपके इशारों ने बड़े-बड़े साम्राज्य बनाये और बिगाड़े हैं।

ताल०—लो राजकुमार, यह अपनी मणि सम्हालो! रघुकुल का जैसा यश सुना था, उसे वैसा ही पाया। कुमार, तुम आवश्यकता से अधिक धर्मात्मा, वीर, सरल और सहृदय हो!

ऋतुध्वज—(मणि लेकर) क्षमा करना, मैंने आप के विषय में अनुचित आशंका की। वह हृदय की दुर्बलता थी। क्षत्रियों का सर्वस्व समाज की सेवा के लिए ही है!

ताल०—कुमार, मैं तुम्हारे उपकार को कभी न भूलूँगा! तुम ने मेरे वंश की रक्षा की है। जाओ, अब तुम अपने भवन जाओ! तुम्हारी पत्नी, माता-पिता, तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे! मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ!

(तालकेतु का प्रस्थान)

ऋतुध्वज—न जाने क्यों आज चित्त उदास हो रहा है। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कुछ खो गया है। हृदय सूना-सा हो गया है। तारे टूटते-से दिखाई देते हैं। पृथ्वी नीचे से धसकती जान पड़ती है! अंधकार अधिक गहरा जान पड़ता है। रात कुछ भयंकर जान पड़ती है! मदालसा, तुमने क्या जादू किया है। तुम्हारे बिना एक घड़ी भी नहीं रहा जाता।

(प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

———

दृश्य ७

[अयोध्या का राज-महल। समय रात्रि का प्रथम प्रहर।

महारानी रोग-शय्या पर। शत्रुजित पास बैठे हैं।]

महारानी—(विक्षिप्तावस्था में) कौन कहता है, बेटा, तू मर गया है। तू मर नहीं सकता। मेरी आँखों के तारे, तू डूब नहीं सकता। मेरे हृदय के प्रकाश, तू बुझ नहीं सकता। दौड़ना-दौड़ना वह तालकेतु आया। पकड़ो-पकड़ो! देखो-देखो! उसने अयोध्या में आग लगा दी है। रघुकुल भस्म हुआ जा रहा है। वाह, ऋतुध्वज खूब! तू खूब लड़ रहा है। तेरी वीरता जगत्-प्रसिद्ध रहेगी। वह देखो, मेरा पुत्र विजय प्राप्त करके आ रहा है। विमान में बैठा कर अपने साथ मुझे भी स्वर्ग में ले जायगा। बेटा, जहाँ तू जायगा, मैं भी चलूँगी।

(बेहोश हो जाती है)

शत्रुजित—अब नहीं सहा जाता। हृदय फटा जाता है। क्षत्रियों का धर्म युद्ध करना है। कैसा घृणित कार्य्य है यह! कैसा भयंकर कार्य्य है। जो जितने अधिक घरों को उजाड़ सके, जितनी अधिक बालाओं के मस्तक का सिन्दूर पोंछ सके, जितने अधिक पिताओं के हृदय को चूर कर सके, जितनी अधिक माताओं की गोद खाली कर सके वह उतना ही अधिक बहादुर है, उतना ही अधिक वीर है। हिंसा की प्यास बुझती नहीं है। सुनते हैं, प्रेम से भी साम्राज्य स्थापित किये जा सकते हैं। परन्तु इन राक्षसोंसे जो प्रेम का मूल्य समझते नहीं हैं, जिनकी तलवार कभी म्यान में नहीं

होती, उनसे कैसे प्रेम किया जाय ! युद्ध अनिवार्य्य हो उठता है। लोहू की नदी बह निकलती है। कितने घरों के चिराग़ बुझ जाते हैं। महानाश अपनी जीभ लपलपाने लगता है, श्मशान चेत जाता है—लाशों के ढेर लग जाते हैं। परिणाम क्या होता है। हिंसक को हिंसा से मार डालने पर भी हिंसा नहीं मरती, पाप नहीं मरता। वह पातालकेतु से तालकेतु के शरीर में प्रविष्ट हो जाता है। भावना का अन्त नहीं किया जा सकता। पृथ्वी का कोना-कोना रक्त से रँगा हुआ है। फिर भी प्यास नहीं बुझी ! हाय, दुष्टता का अन्त कैसे हो ! आत्म-रक्षा के लिये तलवार को तलवार से रोकना पड़ता है। मैं भी तालकेतु से प्रतिशोध लूँगा ! इन बूढ़ी हड्डियों में अब भी शक्ति है ! मैं भी पिशाच बनूँगा। सम्पूर्ण पातालपुरी को भस्म कर दूँगा। परन्तु, क्या इससे मेरा पुत्र जीवित हो जायगा ! क्या इसमें सहस्रों निरपराधों की हत्या नहीं होगी ! क्या मेरी तरह सैकड़ों पिता पागल नहीं हो जायँगे। महारानी की तरह सैकड़ों माताओं का हृदय चकनाचूर नहीं हो जायगा, मदालसा की भाँति सैकड़ों सतियाँ प्राण नहीं देंगी। परन्तु प्रतिशोध न लिया जाय, तो संसार समझेगा शत्रुजित कायर है ! ऋतुध्वज ! ऋतुध्वज !! हाय, बेटा मैं आता हूँ, तू कहाँ है !

(ऋतुध्वज का प्रवेश)

ऋतुध्वज—मैं आ रहा हूँ। आप व्याकुल क्यों हो रहे हैं। यह अंधकार कैसा ! हाहाकार कैसा ? महाकाल जैसी विभीषिका कैसी ? राजमहल श्मशान-सा क्यों हो रहा है ?

शत्रुजित—कौन ऋतुध्वज ! असम्भव ! छल है। लाना मेरी तलवार। तालकेतु ही ऋतुध्वज का रूप धारण करके आया है। तू मेरे ऋतुध्वज को खा गया है। यहाँ से बचकर नहीं जा सकता।

ऋतुध्वज—यह क्या काण्ड ? क्या आप पागल हो गये हैं ? देखिये मैं आपका ऋतुध्वज ही हूँ। माँ, इस प्रकार क्यों पड़ी हुई है। मदालसा कहाँ है ?

शत्रुजित—हाँ हाँ तू ऋतुध्वज ही है ! आ बेटा मेरे खोये हुए धन ! (हृदय से लगाते हैं) बेटा, घोर अनर्थ हो गया !

ऋतुध्वज—क्या हुआ पिता जी !

शत्रुजित—उस हानि की पूर्ति कैसे हो ?

ऋतुध्वज—क्या हानि ? मैं यह क्या देख रहा हूँ।

शत्रुजित—बेटा, एक ब्राह्मण ने आकर कहा, ऋतुध्वज राक्षसों से लड़ते हुए स्वर्ग सिधार गये। उनकी बाहु में एक मणि बँधी हुई थी, उसे लेकर आया हूँ। क्या वह केवल माया थी—धोखा था। हम तो लुट गये। अब यह देखकर कि तू जीवित है। मेरा हृदय फटा जाता है। अब धैर्य कैसे रखा जाय। (रोने लगते हैं)

महारानी—बेटा ऋतुध्वज ! कैसा सुन्दर विमान है ! क्या इसमें मुझे नहीं ले जायगा। तू तो अकेला ही स्वर्ग चला ! नहीं, नहीं मदालसा भी साथ है ! माँ का प्रेम पत्नी के प्रेम से हीन है।

ऋतुध्वज—उठो, माँ,। तुम्हारा ऋतुध्वज तुम्हारे पास है ! मैं जीवित हूँ ! तुम क्षत्राणी हो। क्षत्राणियाँ केवल रण में मरने के लिए ही पुत्रों को जन्म देती हैं। अभी तो मैं जीवित हूँ।

महारानी—(आँखें खोलकर) कौन बेटा, तू जीवित है! नहीं नहीं। यह केवल छल है। हट जाओ! हट जाओ! मुझे शान्ति से मर लेने दो।

ऋतुध्वज—नहीं, माँ, मैं ऋतुध्वज ही हूँ। जिसे तूने जन्म दिया, गोद में खिलाया, उसे पहचानती नहीं।

महारानी—सत्य! तू ऋतुध्वज है! हाय, मदालसा! तुझे कहाँ पाऊँगी! (बेहोश)

ऋतुध्वज—पिता जी मदालसा कहाँ है!

शत्रुजित—मणि को देखते ही उसने शरीर त्याग दिया। अभी तक तो मैंने संतोष किया था, परन्तु यह देखकर कि तू जीवित है, प्राण निकले जाते हैं, कलेजा फटा जाता है!

ऋतुध्वज—हे भगवान! तूने मेरा संसार ही उजाड़ दिया। मेरा जीवन सूना कर दिया। मेरा कलेजा निकाल लिया! ताल-केतु ही ब्राह्मण का रूप धारण कर मणि छल लाया। हाय, पाप से पुण्य हार गया। वे सारी मधुर स्मृतियाँ जो मदालसा मेरे हृदय पर अंकित कर गई है, आग के अंगारों की तरह जल रही हैं! जीवन भर इस आग में कैसे जलूँगा। मदालसा, मुझ से अपराध अवश्य हुआ, परन्तु उसका इतना कड़ा दण्ड! मेरी हृदय-मणि! मैं तुझे सम्हाल कर न रख सका। मैं तेरे योग्य न था, इसी लिये तूने मुझे त्याग दिया। मैं तेरे शव के भी दर्शन न पा सका। बिदा दो, पिता जी हमारा इतने ही दिन का संयोग था। अब राजमहल मुझे श्मशान है।

शत्रुजित—और माँ-बाप भूत! बेटा अधीर न हो! तू बुद्धि-

मान और वीर है। इन दुखों में डाल कर भगवान हमारी परीक्षा ले रहा है। मदालसा को पाना सम्भव नहीं। इस प्रकार व्याकुल होने से क्या होगा ?

ऋतुध्वज—यह हृदय हृदय ही है! पत्थर नहीं! यह आघात असह्य है। राज-पाट, धन-दौलत सबसे मुझे घृणा हो गई है। मुझे कुछ नहीं चाहिए। केवल मदालसा, मदालसा, अब मुझे मर ही जाना चाहिए!

शत्रुजित—मदालसा से भी सुन्दर राजकुमारी से तेरा विवाह कर दूँगा। इस बुढ़ापे में हम पर विपत्ति का पहाड़ पटक कर कहाँ जाता है ?

ऋतुध्वज—पिता जी, यह स्वार्थ-भावना है! आप प्रेम की पीड़ा की गहराई को देखिये! जो जिससे प्रेम करता है, वही उसे संसार में सब से सुन्दर है। मदालसा के समान रूप और गुण-त्रिभुवन में कहाँ है। वह प्रेम कहाँ है! मैंने कर्तव्य के कठोर मार्ग पर चलते समय उसे याद न रखा! मदालसा, तेरा प्रेम सच्चा था। मेरी मृत्यु का समाचार पाते ही तूने प्राण त्याग दिये! मैं अभी तक जीवित हूँ। मैं तेरा अनुकरण करूँगा। आता हूँ।

(उन्मत्त की भाँति चला जाता है)

शत्रुजित—तालकेतु, तेरा छल विजयी हुआ। पुण्य से पाप जीत गया! ऋतुध्वज! ऋतुध्वज! तू कहाँ जायगा! मैं नहीं जाने दूँगा! वह जाने क्या अनर्थ कर डाले। इसकी रक्षा करनी चाहिए। हमारी धर्म-परायणता ही हमें खा गई!　　　　(प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

चौथा अंक

दृश्य १

(पाताल का राजमहल)

ताल०—मदालसा मेरे यहाँ क़ैद है, ऋतुध्वज सन्यासी हो गया है, राजा शत्रुजित पागल हो गया है। भाई की मृत्यु का प्रतिशोध पूर्ण हो चुका है। अब आर्य्यावर्त में मुझ से लोहा लेने वाला कोई नहीं। पातालकेतु एक बार ही समाप्त हो गया, किन्तु ऋतुध्वज तू घड़ी-घड़ी मरेगा, तिल-तिल जलेगा। तेरे उपयुक्त यही दण्ड है। किस युक्ति से तुझे परास्त किया है। कपट ही तो हमारी राजनीति है। हम से सत्य व्यवहार करके आर्य अपने ही गले पर छुरी चलाते हैं, स्वयं परास्त होते हैं। परन्तु, अभी विजय पूरी नहीं हुई है! मदालसा का दम्भ!

(मन्त्री का प्रवेश)

मंत्री—महाराज की जय हो!

ताल०—कहिए, क्या समाचार है।

मंत्री—महाराज, आज उस ब्राह्मण का विचार करना है, जिसे एक वर्ष से बन्दी कर रखा है।

ताल०—मंत्री जी, मैं तो भूल ही गया था! उसे अभी उपस्थित करो।

(मंत्री का प्रवेश)

ताल०—संसार ईश्वर का ऐसा गुलाम हो रहा है, कि हमारे घोर प्रयत्न से भी आस्तिकता की जड़ ज़रा भी नहीं हिली। तलवार के डर से लोग मेरे मुँह पर कह देते हैं, 'हम ईश्वर को नहीं मानते' । परन्तु उनके हृदय में ईश्वर के प्रति श्रद्धा और विश्वास बना ही रहता है । मेरे राज्य में ऊँचे पद पाने के लोभ से अनेक लोग नास्तिक बन जाते हैं । मुझे यह पता लगाना कठिन है कि कौन सच्चा नास्तिक है । वेदों ने पुनर्जन्म और कर्म-फल का ऐसा भय लोगों के दिल में बैठा दिया है कि सारी विलास-सामग्रियाँ व्यर्थ हो रही हैं, उनका कुछ महत्व ही नहीं रहा। ईश्वर का अस्तित्व मिटाये बिना संसार सुखी नहीं हो सकता। राष्ट्र की उन्नति में भी इससे बाधा पड़ती है । पुरुषार्थ को भूल कर लोग ईश्वर और प्रारब्ध पर आशा लगा कर बैठ जाते हैं । देश आलसी हो जाता है फिर पराधीनता स्वाभाविक ही है । अपनी शक्ति को ही सर्वोपरि समझ कर पुरुषार्थ करना ही पुरुषों का कर्तव्य है । ईश्वर और प्रारब्ध व्यर्थ हैं ।

(ब्राह्मण सहित मंत्री का प्रवेश)

ताल०—कहो, ब्राह्मण देवता ! तुम्हारा ईश्वर तुम्हें इस बन्दी-गृह से नहीं छुड़ाता ।

ब्राह्मण—मैं बन्दीगृह में कहाँ हूँ । मुझे कोई बन्दी नहीं कर सकता ।

ताल०—मैं कर सकता हूँ । मैंने कर रक्खा है ।

ब्राह्मण—यह तुम्हारा मिथ्या दम्भ है । तुम ने मेरे हाथ-पैर

जंज़ीरों में ज़रूर कस रखे हैं, परन्तु, मेरी आत्मा तो मुक्त है। उसे बाँधने योग्य जंज़ीर तुम बनवा नहीं सके हो!

ताल०—सांसारिक ऐश्वर्य्य को त्याग कर लँगोटी लगाने में क्या आनन्द! यदि तुम आस्तिकवाद का प्रचार करना छोड़ दो तो मैं तुम्हें एक जागीर दे सकता हूँ।

ब्राह्मण—सबसे बड़ी जागीर तो ब्रह्मानन्द है, ईश्वर-भक्ति है। वह मुझे प्राप्त है। संसार के माया-जाल में फँसने की मेरी इच्छा नहीं है। ईश्वर की भक्ति के आगे सारे भूमण्डल का साम्राज्य भी तुच्छ है! राक्षसराज, तुम मुझे व्यर्थ प्रलोभन देते हो।

ताल०—यदि तुम मेरी आज्ञा का पालन न करोगे तो तुम्हें जीवित ही जलवा दूँगा।

ब्राह्मण—जलवा दो तालकेतु! उससे मेरा कुछ नहीं बिगड़ता। आत्मा को जला सकने वाली आग कहीं नहीं है। पाप की आग से अवश्य आत्मा व्यथित होती है, उसमें तू स्वयं जल रहा है! मेरे स्वामी ने मुझे उससे बाहर निकाल कर, अपने चरणों में स्थान दिया है। शरीर तो कारागार है, उसे चिता में जला डालिये। मैं मुक्त हो जाऊँगा। तुम मेरा उपकार ही करोगे, अनिष्ट नहीं।

ताल०—नहीं, प्राण-दण्ड से तुम्हें कम कष्ट होगा। तुम्हारी दोनों आँखें निकलवा लूँगा।

ब्राह्मण—आत्मा के नेत्र खुल चुके हैं। ले लो ये आँखें तुम्हीं ले लो। मुझे उससे कुछ दुख न होगा। परमेश्वर की अँगुली पकड़ कर मैं चल रहा हूँ। मैं कहीं ठोकर नहीं खा सकता।

ताल०—मैं तो अस्तिकों का अस्तित्व मिटाने को ही सिंहासन पर बैठा हूँ। मंत्री जी, ले जाओ ब्राह्मण देवता को। इनकी आँखों में लोहे के तप्त सींखचे घुसा दिए जाएँ। देखना है, इनका ईश्वर तालकेतु को क्या दण्ड देता है।

ब्राह्मण—ईश्वर तुझे प्रकाश दे! चलो, मंत्री, तुम अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करो!

(ब्राह्मण और मंत्री का प्रस्थान)

ताल०—देख, संसार! तालकेतु की शक्ति का ताण्डव देख! पातालकेतु की मृत्यु का प्रतिशोध देख! आस्तिकों का अन्त! मदालसा अभी तुम्हारा गर्व चूर्ण करना है! प्रतिशोध! प्रतिशोध!! अब मदालसा की सुध लूँ। वह जीवित है या मर गई!

(प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

———

दृश्य २

[पाताल का बन्दीगृह। मदालसा विक्षिप्तावस्था में लेटी हुई]

मदालसा—अहाहा ! मेरे लिए स्वर्ण-रथ लेकर ऊषा के कोमल और मधुर प्रकाश में, नभ के विस्तृत मैदान से क्षितिज की राह नीचे उतर कर मेरे प्रियतम आ रहे हैं । मैं सौभाग्यशालिनी हूँ। हाय, हाय वह रथ रुक गया ! हाय किसने पकड़ लिया, वह कौन है, बड़े बड़े दाँतों वाला ! उसकी जिह्वा कितनी लम्बी, उसका शरीर कैसा भयानक है ! उसकी आँखें अंगारे की तरह लाल हैं। हाय, हाय, उस रथ को ही खा लिया। (अचेत हो जाती है, एक दासी भोजन लेकर उपस्थित होती है)

दासी—यह तो मूर्छित पड़ी है। तालकेतु, तू बड़ा निष्ठुर है, इतने दिन से इसके मुँह में अन्न का एक कण भी नहीं गया। मनुष्य कैसा पिशाच होता है ! इस पिशाचपुरी में रहकर निष्ठुरता देखने की मैं अभ्यस्त हो गई हूँ, परन्तु मेरा नारी-हृदय अभी तक इतना कठोर नहीं हुआ, जो ऐसे दृश्य देख सकूँ।

मदालसा—(विक्षिप्तावस्था में) पिशाच पातालकेतु. तू मुझे छोड़ दे ! मेरे पिता के यहाँ पहुँचा दे ! हाय, यहाँ मेरी रक्षा करने वाला कोई नहीं। इनके सर पर बज्र नहीं टूटता !

दासी—देवि, उठो ! इस प्रकार जान देने से क्या लाभ ! उठ कर भोजन करो !

मदालसा—क्या ज़हर लाई हो ! हाँ लाओ ! नहीं-नहीं अब ज़हर भी नहीं लूँगी ! उसकी भी आवश्यकता नहीं रही ! वह देखो, राजकुमार ऋतुध्वज आ रहे हैं ! कौन वही तो हैं, हाँ, वही तो हैं। वह देखो उनका कुवलय विमान उड़ रहा है ! अब मैं मुक्त हो जाऊँगी ! अब मैं मुक्त हो जाऊँगी ।

दासी—बहन, शान्त हो !

मदालसा—आज मेरा स्वयम्वर है, आज मेरा विवाह है । मैं शान्त क्यों रहूँ आज मैं नृत्य करूँगी, आज मैं गाऊँगी। मैं गन्धर्व-कन्या हूँ। (उठने का प्रयत्न करती है) हाय, उठने की शक्ति नहीं। नृत्य न कर सकूँगी तो गाऊँगी ही। सूर्य देव रुक जाओ। आज ऐसा गीत सुनाऊँगी, जैसा तुमने कभी न सुना हो । चन्द्र निकल आओ ! तारागण जल्दी चमको, सब पंक्ति बाँध कर खड़े हो जाओ। मैं गीत सुनाती हूँ। मेरी वीणा लाना। मेरी वीणा ! कुण्डला !

दासी—देवि, कुण्डला नहीं है ! तब भी तुम मुझे अपनी सखी जानो। इस पिशाचपुरी से तुम्हें मुक्त करने का प्रयत्न करूँगी !

मदालसा—कौन ? तू कुण्डला है ? नहीं-नहीं कुण्डला तो मर गई ! तू तो पिशाचिनी है, मौत है, प्रलय है, सर्वनाश है । मुझे खायगी ! खा ! परन्तु ऋतुध्वज को छोड़ दे ! उसके माता पिता रोते होंगे ! रानी जान दे देगी ! मदालसा मर गई होगी।

(मूर्च्छित)

दासी—तालकेतु ! तालकेतु !! तूने घोर अनर्थ किया है। आर्य्यावर्त, जहाँ ऐसी पतिव्रता, सहनशीला और पतिव्रता

देवियाँ हैं, वास्तव में पूजनीय हैं! देवि मदालसा, तुम्हारा प्रेम सच्चा है। यह दृश्य मुझसे नहीं देखा जाता है । तालकेतु मैं तेरा सारा छल प्रकट कर दूँगी। दो सरल हृदयों की हत्या करने से क्या लाभ? आर्य्यावर्त और पाताल लोक की संस्कृति और धर्म-सिद्धान्तों में अन्तर हो सकता है, परन्तु हृदय का धर्म तो सवत्र समान है। वही संसार को एकता के, बन्धुत्व के, शान्ति के सूत्र में बाँध सकता है। परन्तु, वही हृदय-धर्म तालकेतु द्वारा तिरस्कृत हो रहा है। तालकेतु तेरा हृदय हृदय नहीं, पत्थर है। तेरा रहस्य प्रकट कर दूँगी ।

मदालसा—(कुछ सचेत होकर) हाय, प्रियतम क्यों रूठते हो!

दासी—देवि, सतियों के सुहाग को कोई नहीं लूट सकता। वह केवल छल था। तुम्हारे स्वामी अभी जीवित हैं।

मदालसा—व्यर्थ सान्त्वना से क्या होगा। आधी आशा, आधी निराशा की अपेक्षा घोर निराशा अच्छी। मेरे स्वामी जीते जी मेरी मणि किसी को दे ही नहीं सकते। मुझे मर जाने दो—मर जाने दो।

(तालकेतु का प्रवेश)

तालकेतु—मदालसा! मदभरी घड़ियों को मिट्टी करने से क्या लाभ । ऋतुध्वज, इस संसार में नहीं है, अब किसके लिए यह वेदना का भार उठा रही हो। तालकेतु के राजमहल में सकल ऋद्धि-सिद्धियाँ, सुख-सम्पत्तियाँ हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं। ऋतुध्वज को भूल जाओ और पाताल की साम्राज्ञी बनना स्वीकार कर लो।

मदालसा—कहले दुष्ट, तेरी इच्छा हो सो कहले! यह शरीर

तू ले ले ! लेकिन, ठहर, मुझे मर लेने दे, इसमें से हृदय और आत्मा को निकल जाने दे।

ताल०—अच्छा तो तू मर ही ! दया के हम दास नहीं हैं। फूल को हम सर पर नहीं चढ़ाते। तोड़ते हैं, सूँघते हैं, मल कर फेंक देते हैं।

दासी—महाराज ! सती का अभिशाप सर पर क्यों लेते हैं। अबला की आह से पाताल का राजसिंहासन टुकड़े-टुकड़े हो जायगा ! मैं आप के हित की बात ही कहती हूँ।

ताल०—दूर हो दुष्ट ! तेरा इतना साहस ! पातालकेतु को करुणा दासी ने धोखा दिया, तू मुझे देना चाहती है ! निकल मेरे महल से। अब तेरी छाया भी मेरे महल में प्रवेश न करे।

(दासी को घसीटता ले जाता है)

मदालसा—कैसी आग जल रही है ! संसार भस्म हो जायगा। आकाश में कैसी लपटें उठ रही हैं। वह मेरी चिता जल रही है ! पुण्य जला जा रहा है, पाप अट्टहास कर रहा है ! ईश्वर का सर कटा पड़ा है। शैतान नाच रहा है। पिशाच खप्पर भर-भर कर रक्त और शराब पी रहे हैं। वह देखो कोई लक्ष्मी के बाल खींच रहा है। विष्णु की टाँग पकड़ कर घसीट रहा है। धर्मराज बैठकर रो रहे हैं ! वेश्याएँ शृङ्गार कर रही हैं, सतियों को फाँसी पर लटकाया जा रहा है। कुण्डला ! कुण्डला !! मुझे बचा। ये मुझे चिता में डाले देते हैं। हाय, प्राणनाथ कब आयेंगे। (अचेत)

(पट-परिवर्तन)

दृश्य ३

[संध्या-समय । वन-प्रदेश ।]

ऋतुध्वज—तपस्या की आग से कहीं अनुराग की आग बुझती है ! हा, मदालसा ! तेरी इन्द्र-धनुष सी रंगीन छवि हृदय में व्यथा-वेदना की बिजली पटक कर महाशून्य में छिप गई । तू बिजली की तरह चमक कर हृदय को टुकड़े टुकड़े करके अन्तर्धान हो गई । तेरी स्मृति के दंशन के सिवाय अब मेरे पास क्या रह गया है ! कैसी ज्वाला है, कैसी अशान्ति है ! इस हृदय को जिसमें तेरी अनुराग की आग जल रही है, आज निकाल कर फेंक दूँगा ! इन आँखों को, जिनमें तेरा रूप बसा हुआ है, फोड़ डालूँगा ! इस जीवन को जो चारों ओर तेरी स्मृतियों से भरा हुआ है समाप्त कर दूँगा । मदालसा, तू केवल छलने आई थी !

(कुण्डला का प्रवेश)

कुण्डला—तपस्वी तुम कौन हो ? मैं तुम्हारे चरणों में प्रणाम करती हूँ ।

ऋतुध्वज—कौन, कुण्डला ! तुम यहाँ कहाँ ! तुमने मुझे नहीं पहचाना ! हाँ, भूल जाओ ! आज सब लोग मुझे भूल जाएँ ।

कुण्डला—तुम्हें इस वेश में कौन पहचान सकता है ? यह वेश तो राजकुमार के उपयुक्त नहीं !

ऋतुध्वज—कुण्डला ! तुम मुझे राजकुमार क्यों कहती हो !

मैं कुछ नहीं हूँ। केवल एक जीवित शव हूँ। अदृश्य को यही वेश अच्छा लगता है, तभी तो उसने मेरा सारा सुख छीन लिया। मैं राज-पाट छोड़ चुका हूँ, तपस्वी होने का प्रयत्न करता हूँ, परन्तु उसमें भी सफल नहीं होता।

कुण्डला—तुम क्या कह रहे हो? ऐसी क्या विशेष घटना घटी है!

ऋतुध्वज—क्या तुम्हें नहीं मालूम! चन्द्रमा को सदा के लिए राहु ने ग्रस लिया! तुम्हारी सखी इस संसार से चल बसी।

कुण्डला—क्या कहते हो कुमार, यह बज्रपात कैसे हुआ?

ऋतुध्वज—यह सब जान कर क्या होगा? विश्व-कामना का धन, सृष्टि के सम्पूर्ण सौन्दर्य्य का सार, मेरी जीवन-ज्योति, मेरी जीवन-नौका की पतवार, मुझ से छीन ली गई। मैं लुट गया, कंगाल हो गया, निरावलम्ब हो गया।

कुण्डला—हाय, मदालसा! तुझे इतनी जल्दी ही संसार से चला जाना था, तो इतनी ममता का आयोजन क्यों किया था। कुमार, इस दुर्घटना का कारण।

ऋतुध्वज—राक्षसों के उत्पात फिर प्रारम्भ हो गये थे, इस लिये मैं उनसे युद्ध करने के लिये गया। मदालसा ने अपनी मणि मेरे बाहु में बाँध दी और कहा "इसे कभी अलग न करना! यदि मैं इसे देखूँगी और तुम्हें न देखूँगी तो प्राण दे दूँगी।" मैं उसकी आज्ञा का उसके अनुरोध का पालन न कर सका। मैंने कर्तव्य को प्रेम से ऊपर स्थान दिया। आज स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि कर्तव्य प्रेम के चरणों पर नतमस्तक होकर पड़ा है?

कुण्डला—प्रेम और कर्तव्य परस्पर मित्र हैं, बैरी नहीं। दोनों हाथ पकड़ कर चलते हैं। उनमें कौन छोटा है यह जानने का प्रयत्न व्यर्थ है! मुझे पूरी घटना सुनाओ!

ऋतुध्वज—तालकेतु ने ब्राह्मण का वेश बना कर वह मणि मुझ से माँग ली। उसने अपने दुख का जो वर्णन किया उससे मुझे उस पर दया आ गई। भावी ने मेरी मति भ्रष्ट कर दी।

कुण्डला—जब तुम शत्रुओं से घिरे हुए थे, उस समय सहसा किसी पर विश्वास करना क्या उचित था। उसने मणि किस बहाने माँगी।

ऋतुध्वज—उसने कहा, मेरे पुत्र का एक अत्यन्त रूपवती कन्या से विवाह हुआ है। वह मदालसा की मणि चाहती है, नहीं तो प्राण दे देगी, मेरा पुत्र उससे बहुत अधिक प्रेम करता है, यदि उसने प्राण दे दिये तो वह भी जीवित न रहेगा! मेरा कुल ही नष्ट हो जायगा। मुझे उसकी कथा सुनकर दया आ गई और उसे मणि दे दी।

कुण्डला—इसी को तुम कर्तव्य-बुद्धि कहते हो। इसी बुद्धि से आर्य्यावर्त का साम्राज्य सम्हालते हो। इसी बुद्धि से संसार की एक बहुत बड़ी शक्ति से युद्ध करना चाहते हो। ऐसी स्त्रियाँ प्राण नहीं दे सकतीं, ऐसे युवक जो स्त्री की अच्छी-बुरी सभी कामनाओं को पूरा करना धर्म समझते हैं, संसार का कुछ उपकार नहीं कर सकते। यदि यह कथा सत्य भी होती तो उनको मर जाने देना ही तुम्हारा कर्तव्य था। कुपात्र को दान देना पाप है। तुमने दान की मर्य्यादा नहीं रखी, इसी लिये तुम्हें यह दण्ड मिला।

ऋतुध्वज—मैं दोषी हूँ, मैं यह मानता हूँ। इसी कारण पश्चा-ताप की आग में जल रहा हूँ। दण्ड भोग रहा हूँ। मैंने अपने हाथ से मदालसा की मृत्यु बुलाई है। मैंने अपने हाथ से मेरे हरे-भरे उपवन में आग लगा दी, उन्हीं लपटों में मैं जल रहा हूँ।

कुण्डला—वह मणि मदालसा के पास कैसे पहुँची।

ऋतुध्वज—उसी तालकेतु ने ले जाकर वह मणि महाराज को सौंप दी और कहा, 'ऋतुध्वज राक्षसों से लड़ता हुआ मारा गया। मदालसा ने समाचार पर विश्वास कर लिया और प्राण त्याग दिये। इच्छा होती है सारी पातालपुरी में आग लगा दूँ।

कुण्डला—क्या उसका शव-दाह तुमने किया था ?

ऋतुध्वज—नहीं, मैं अयोध्या पहुँच भी न पाया कि चिता की आग बुझ चुकी थी !

कुण्डला—तुम्हें इस प्रकार पत्नी के वियोग में संसार त्याग देना उचित नहीं। देश संकट में है, आक्रमणों का ताँता लगा हुआ है। मदालसा से देश बड़ा है। संसार में रूप का टोटा नहीं है। तुम किसी अत्यन्त रूपवती कुमारी से फिर विवाह कर लेना। उसे ही मदालसा समझ लेना।

ऋतुध्वज—आज मैं तुम्हारे मुँह से कैसी बातें सुन रहा हूँ। जिस हृदय-सिंहासन पर मदालसा का अखण्ड शासन था और है, उस पर मैं किसी को स्थापित कर सकूँगा। 'स्वाति छोड़ क्या जग के जल से चातक प्यास बुझावेगा। या तो हँस चुगेगा मोती या भूखों मर जायगा।' इस चातक को जो स्वाति-जीवन प्राप्त हुआ था, वह प्यास बुझाने के पहले ही ढुलक गया। इस हंस को

अमूल्य मोतियों का हार प्राप्त हुआ था, परन्तु वह खो गया। केवल मर जाना ही अब मेरे निराश जीवन का लक्ष्य रह गया है। मेरी जीवन-नौका की पतवार टूट गई—अब तो नौका को ही लहरों में दो-चार झोंके खाकर डूब जाना पड़ेगा।

कुण्डला—दुख से घबरा कर नौका को डुबा डालना वीरत्व नहीं है। वियोग की आँच को दीपक की तरह जीवन भर जलाये रखना वीर का ही कार्य्य है। कुमार, तुम लौट जाओ। अयोध्या को, आर्य्यावर्त को—अनाथ मत करो। मदालसा के प्रति तुम्हारा मोह कर्तव्य के पथ में बाधक हुआ, वैदिक धर्म के नाश का कारण हुआ, देश की परतन्त्रता में सहायक हुआ तो वह आदरणीय न रहेगा।

ऋतुध्वज—कुण्डला! धर्म, देश और कर्तव्य के विषय में सोचने की मुझ में शक्ति नहीं। मेरा धर्म तो उसी दिन डूब गया, जिस दिन मदालसा ने मुझे छोड़ दिया।

कुण्डला—अच्छा, कुमार, कुछ दिवस तुम मेरे आश्रम में रहो। सम्भव है, विवेक इस पीड़ा को मधुर और सह्य बना दे। चलो, कुमार! संकोच क्यों करते हो!

ऋतुध्वज—चलो, परन्तु यह घाव भरेगा कैसे?

(दोनों का प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

———

दृश्य ४

[अयोध्या का राजमहल]

शत्रुजित—मन्त्री जी, ऋतुध्वज का कुछ पता लगा।

मंत्री—महाराज, उनकी खोज में कुछ कसर नहीं रखी गई। दुःख की बात है कि उनका कहीं पता नहीं लगा।

शत्रुजित—क्या रघुकुल का इसी प्रकार अन्त होना था। ऋतुध्वज को माता-पिता का मोह-त्याग कर इसी प्रकार चला जाना चाहिए था।

मंत्री—महाराज, कुमार बुद्धिमान, विचारवान और कर्तव्यशील हैं। वियोग की व्यथा कम होते ही वे अयोध्या की सुधि लेंगे। आप निराश न हों।

शत्रुजित—मैं स्वयं उसकी खोज में जाऊँगा। ऋतुध्वज मुझसे रूठ नहीं सकता। जब मदालसा आई न थी तब भी तो वह अपने पिता के पास रह सकता था, अब क्यों न रह सकेगा। मैं उसे मना लाऊँगा। मेरी बुढ़ापे की लकड़ी क्या इस प्रकार खो जायगी।

(देवराज इन्द्र का प्रवेश)

आओ, देवराज! आज मैं सौभाग्यशाली हुआ जो आपने मेरे घर को पवित्र किया।

इन्द्र—आपके समाचारों ने मुझे व्यथिन कर दिया। मित्रके दुख में हाथ बटाना मित्र का कर्तव्य है। राजन, आपका दुख दूर हो सकता है।

शत्रुजित—कैसे देवराज! क्या टूटा हुआ दर्पण जोड़ा जा

सकता है। क्या मदालसा फिर जीवित हो सकती है, जिसकी मृत्यु ने मेरा राजमहल सूना कर दिया है।

इन्द्र—परन्तु राजकुमार तो लौट सकते हैं। उनका वैराग्य दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। उन्हें शरीर की नश्वरता बता कर उनके हृदय से माया का मोह छुड़ाना चाहिए। ऋतुध्वज बुद्धिमान है, उनके हृदय में विवेक जाग्रत होगा तब वह अवश्य आप की, देश की, और धर्म की सुधि लेंगे।

शत्रुजित—कुमार का तो कुछ पता ही नहीं। वह तो वैरागी होकर चला गया।

इन्द्र—मैंने राजकुमार ऋतुध्वज का पता लगाने का प्रयत्न किया है। तालकेतु ने आर्य्यावर्त पर आक्रमण करने की तैयारी प्रारम्भ कर दी है। इसलिए मैं भी चिन्तित हो उठा हूँ। परन्तु आप अभी तक पुत्र और पुत्रबधू के वियोग में बेहोश हैं।

शत्रुजित—देवराज, मेरा सामर्थ्य, पौरुष और साहस तो उसी दिन समाप्त हो गया, जिस दिन पुत्रबधू से हाथ धोना पड़ा और पुत्र को खोना पड़ा। मदालसा की मृत्यु ने मेरा राजमहल उजाड़ दिया। पुत्र के वैरागी हो जाने से मेरा राजदण्ड निर्बल पड़ गया है। तालकेतु आता है तो आवे, मैं उसे अपने हाथ से सब कुछ सौंप दूँगा।

इन्द्र—तालकेतु केवल देश-विजय करके नहीं रह जायगा। वह आर्य्यों के धर्म का नाश करना चाहता है।

शत्रुजित—जिस धर्म की रक्षा करने से केवल दुख ही प्राप्त होता है, वह नष्ट हो जायगा तो क्या अहित और अशुभ होगा।

इन्द्र—अयोध्या के महाराज, रघुकुल के सूर्य शत्रुजित के मुँह से मैं यह क्या सुन रहा हूँ ? आप इतने निराश क्यों होते हैं ? विपत्ति किस पर नहीं पड़ती। वीर पुरुष उसे धैर्य के साथ सहन करते हैं। जिस दुष्ट ने तुम्हें इतना दुख दिया है क्या उसे दण्ड देना नहीं चाहिए।

शत्रुजित—उसे ईश्वर दण्ड देगा।

इन्द्र—ईश्वर के अस्त्र तुम हो। तुम्हारे द्वारा ही उसे दण्ड मिले। यही विधाता की इच्छा है।

शत्रुजित—मुझे तो युद्ध से घृणा हो गई है। जिस युद्ध के कारण सैंकड़ों माँ-बाप पुत्रहीन हो जाते हैं, हज़ारों युवतियों की माँग का सिंदूर पुँछ जाता है, वह युद्ध मंगलकारी कैसे हो सकता है ? एक पिता अपने पुत्र का प्रतिशोध लेने के लिए सैकड़ों निर्दोषों के पुत्रों को मार डाले यह कहाँ का न्याय है ?

इन्द्र—कोई किसी को नहीं मारता। युद्ध तो राज-धर्म है। समाज की व्यवस्था रखने के लिये युद्ध आवश्यक हो जाता है। जिस सर्प का धर्म प्राणियों को काट कर मार डालने का है उसे मार डालना ही उचित है। एक को मार कर सैकड़ों की रक्षा की जाती है। यदि तालकेतु का आर्य्यावर्त पर राज्य स्थापित हो गया तो हिंसा, व्यभिचार, अनाचार, नित्य की बातें हो जायँगे। आपके साथ तालकेतु ने जो बर्ताव किया है, वह केवल आपका नहीं रहा, उससे सारी आर्य्य जाति का अपमान हुआ है। देश की मान-मर्य्यादा रखने के लिए उसे दण्ड देना ही होगा।

शत्रुजित—देवराज, मैं बूढ़ा आदमी हूँ। मुझे जीवन का मोह

नहीं। इस दुख से लगभग मर चुका हूँ। युद्ध में मर कर अपनी मृत्यु को अधिक गौरवपूर्ण बना सकता हूँ। परन्तु बिना ऋतुध्वज के।

इन्द्र—कुमार की आप चिन्ता न कीजिये। वह सुरक्षित हैं। वह नर्मदा नदी के दक्षिण तट पर कुण्डला नाम की तपस्विनी के आश्रम में हैं। अब युद्ध की तैयारी कीजिए और राजकुमार को मना लाइए। तालकेतु आर्य्यावर्त पर आक्रमण करे, उसके पहले हमें ही उस पर आक्रमण कर देना चाहिये। अच्छा, अब मुझे जाने की आज्ञा दीजिए।

(प्रस्थान)

शत्रुजित—हिंसा करना घोर पाप है, यह जान कर भी उसमें प्रवृत्त होना पड़ रहा है।

(पट-परिवर्तन)

———

दृश्य ५

[नर्मदा के तट पर कुण्डला का आश्रम । प्रभात ।]

कुण्डला—(गा रही है)

मत पाले माया से प्यार,

अरुण उषा की कुंकुम-लाली,
कुंजों की कुसुमित हरियाली,
अलि-दल-स्वर-लहरी मतवाली,
छल है, नश्वर है संसार !
मत पाले माया से प्यार !

झाँक रही है सन्ध्या काली,
उपवन हो जावेंगे खाली,
ढुलक जायगी मद की प्याली,
जग है अस्थिर और असार !
मत पाले माया से प्यार !

(ऋतुध्वज का प्रवेश)

आओ, कुमार क्या कर रहे थे ?

ऋतुध्वज—दूर बैठा हुआ तुम्हारी आत्मा का संगीत सुन रहा था। अरुण उषा की सुनहली छाया में विहगों के प्राण पुलकित हो कर गा उठे हैं—मुखरित हो उठे हैं। परन्तु तुम्हारा गीत उन सब से मधुर, मीठा, मादक और करुण था। "मत पाले माया से प्यार", यही तो उस नीति का सार है—जीवन-नौका की पतवार है।

कुण्डला—वह गीत तुम्हारे लिये नहीं, केवल मेरे लिए था। तुम्हारे स्वागत को संसार आँखें बिछाये हुए है। तुम्हारे संसार में 'पतझड़ के पीले पत्तों पर, हो कर आता है मधुमास।' परन्तु हमारी जीवन-वाटिका में एक बार ही सौभाग्य-कुसुम मुसकराता है। यदि तुषार से, आँधी से, अथवा माली के निर्दय करों से वह असमय में ही बिदा हो जाय, तो फिर बाटिका सदा सूनी ही रहती है। उसके पल्लवों पर फिर केवल तुहिन-कणों से अश्रुओं ही का शृंगार होता है। तुम्हारे संसार में 'घोर-निशा के बाद उषा का होता उदय मनोहर हास।' प्रकृति देवि तुम्हें वर-माला पहनाने को तैयार है। कुमार वह तो निराश हृदय का गीत था।

ऋतुध्वज—जब नेत्रों की ज्योति बुझ गई तब निशा और उषा समान ही हैं। वसन्त-शिशिर, प्रभात-संध्या, सुख-दुख सब घोर अंधकार में विलीन हो गये। कौन मेरा स्वागत कर रहा है, यह मुझे दृष्टिगोचर नहीं होता। माया से प्यार करने की अब मुझ में सामर्थ्य नहीं है। तुम्हारा गीत सुन लेने के पश्चात् तो संसार की निस्सारता पर विश्वास हो गया है।

कुण्डला—मेरे गीत का अनर्थ न करो। इसमें सन्देह नहीं कि संसार नश्वर है, उससे प्रीति नहीं पालना चाहिए। परन्तु प्रीति न पालने से मेरा तात्पर्य्य उसी में आसक्ति रखने से है। प्रकृति को ही सत्य समझ कर, अपने मुख्य आराध्य को भूल जाना उचित नहीं। जड़-प्रकृति की उपासना में निरत रह कर परम-ज्योति को भूल जाना उचित नहीं। सीमित के प्रति मोह असीम पर परदा न डाले। संसार के रंग-मंच पर जो खेल खेलने को विधि ने भेजा है, उसे सुख-पूर्वक, शान्ति-पूर्वक, तन्मयता से खेलना ही कर्तव्य है। संसार के विविध प्रलोभनों के बीच में भी परम् सौन्दर्य्य रूप परमानन्द-रूप परब्रह्म को न भूलना चाहिये। दुनिया से प्यार न करने का तात्पर्य्य यह नहीं कि उससे असहयोग करना चाहिये। यदि ऐसा करेंगे तो विधि के विधान को बदलने के दोषी होंगे। तुम्हें जाकर अपना राज-कार्य्य सम्हालना चाहिए।

ऋतुध्वज—तुम्हारे सत्संग से मेरे हृदय को बहुत कुछ शान्ति मिली है, परन्तु अयोध्या की ओर जाने की इच्छा नहीं होती। जहाँ मदालसा की शत-शत स्मृतियाँ अंकित हैं, वहाँ हृदय की शान्ति स्थिर नहीं रह सकती।

कुण्डला—जिस दुष्ट ने तुमसे ऐसा नीच और घातक व्यवहार किया है, क्या उसे दण्ड देना तुम्हारा कर्तव्य नहीं है ?

ऋतुध्वज—दण्ड से क्षतिपूर्ति नहीं होती। वह केवल प्रतिहिंसा का उन्माद है।

कुण्डला—पाप को प्रोत्साहन तो कभी न मिलना चाहिए।

(शत्रुजित का प्रवेश)

शत्रुजित—ऋतुध्वज ! तू मुझे भूल सकता है, परन्तु मैं तुझे कैसे भूल जाऊँ !

ऋतुध्वज—पिता जी, मैंने आपको बहुत कष्ट दिया। मैं क्षमा चाहता हूँ। (चरण छूता है)

शत्रुजित—इसमें तेरा क्या अपराध ? तेरी अवस्था में मैं भी ऐसा ही करता। परन्तु, बेटा, माता-पिता के प्रेम को भी समझ। क्या तू समझता है तेरे माता-पिता तुझे कम प्रेम करते हैं।

ऋतुध्वज—पिता जी, मैं आपको कैसे समझाऊँ ? मुझे संसार कारागार-सा ज्ञात होता है।

शत्रुजित—हम ने पाताल लोक पर चढ़ाई करने की तैयारी की है, उसका सेनापति तुझे होना पड़ेगा। क्या तेरे हृदय में क्षत्रिय-रक्त नहीं है ?

ऋतुध्वज—यह बात मैं पहले ही सिद्ध कर चुका हूँ। पर उस से क्या सुख पाया ?

शत्रुजित—प्रत्येक कार्य्य अपने लाभ और सुख के लिये नहीं किये जाते।

(तालकेतु की उसी दासी का प्रवेश जिसे उसने अपमानित करके निकाल दिया था)

दासी—अयोध्या के महाराज और राजकुमार को सादर नमस्ते।

शत्रुजित—तुम्हारा क्या तात्पर्य्य है ? क्या चाहती हो ?

दासी—महाराज ! मैं आर्य-संस्कृति की भक्त, पाताल देश

वासिनी, वहाँ के राजा द्वारा निर्वासित नारी हूँ। आपको एक सुसमाचार सुनाने आई हूँ।

ऋतुध्वज—तू क्या हमें भुलाने आई है। पाताल के किसी व्यक्ति का विश्वास करते समय हृदय काँपता है।

दासी—यह पाताल का दुर्भाग्य है। मदालसा को तालकेतु ने बन्दी कर रखा है, वह जीवित है।

शत्रुजित—उसका अन्त्येष्टि-संस्कार मैंने अपने हाथों से किया है। क्यों हमें मूर्ख बनाती है।

दासी—महाराज, आपको तालकेतु ने छला है। वह माया का शरीर था, झूठा, जिसे आपने जला दिया। मदालसा अभी जीवित है। वह समझती है, राजकुमार संसार में नहीं है, आप समझते हैं वह संसार में नहीं है। कैसा भ्रम है। आपको शीघ्र उसका उद्धार करना चाहिए नहीं तो वह प्राण दे देगी।

ऋतुध्वज—अवश्य, तुरन्त पाताल पर चढ़ाई करनी चाहिए।

कुण्डला—अभी तक यह क्षत्रित्व कहाँ था?

(पट-परिवर्तन)

———

दृश्य ६

[तालकेतु का राजमहल]

ताल०—आज पाताल के सुदृढ़ राज्य का पतन निश्चित है। जिसकी शक्ति से भूमण्डल काँपता था, वह ऋतुध्वज से पराजित होकर भाग आया है। मंत्री जी, अब हमारा सर्वनाश निश्चित है।

मंत्री—देवराज इन्द्र और अयोध्या के राजा की सम्मिलित शक्ति से युद्ध करना साधारण कार्य्य नहीं है।

ताल०—हमारे कोट की दीवारें गिर चुकी हैं—हम इस राज-महल में भी सुरक्षित नहीं हैं।

मंत्री—और भागने का भी कोई मार्ग नहीं है। चारों ओर से शत्रु ने घेर रखा है।

ताल०—यदि एक बार भी, हाय, एक बार भाग पाता, तो इन्द्र, शत्रुजित और ऋतुध्वज सबसे बदला ले सकता। परन्तु अब कोई मार्ग नहीं है। पातालकेतु ! पातालकेतु !! तुम्हारा प्रति-शोध पूरा नहीं हुआ, पाताल के साम्राज्य का ही अन्त हो गया। ऋतुध्वज ! ऋतुध्वज !! तुम्हारी विजय हुई। परन्तु तुम्हें सुख नहीं मिलने दूँगा—मरते-मरते भी मैं तुझे मार कर जाऊँगा! विजय पाकर भी तुम हारोगे, मैं हार कर भी जीतूँगा। मदालसा, मरते-मरते तुझे जीवित नहीं छोड़ूँगा। तलवार के एक ही वार में तेरा सिर ज़मीन पर लुढ़कता दिखाई देगा। जाता हूँ। एक घड़ी का भी विलम्ब उचित नहीं।

(प्रस्थान)

मंत्री—अन्त समय भी दुष्टता । पापियों का यही अन्त है। मैंने भी इसके साथ अनेक पाप किये हैं, इसका न जाने क्या फल भोगना पड़े।

(शत्रुजित, ऋतुध्वज और इन्द्र का प्रवेश)

ऋतुध्वज—कहाँ है तालकेतु, कायर, रण से भाग आया। परन्तु भाग कर कहाँ जा सकता है। तुम कौन हो ?

मंत्री—पाताल का राजमंत्री।

ऋतुध्वज—अस्त्र रख दो ! अन्यथा द्वन्द के लिए तैयार हो जाओ।

मंत्री—द्वन्द ! नहीं अब उसकी आवश्यकता नहीं है। मैं अस्त्र रखे देता हूँ, इसलिए नहीं कि हाथों में उनको पकड़ने की शक्ति नहीं, या मैं मृत्यु से डरता हूँ, वरन् इसलिए कि आज पुण्य के आगे पाप झुक गया है। मैं आत्म-समर्पण करता हूँ, चाहे वन्दी कीजिए, चाहे प्राणदण्ड दीजिए।

ऋतुध्वज—तालकेतु ! तालकेतु ! मंत्री, तालकेतु का पता दो, वह कहाँ है। मुझे किसी से बैर नहीं । मैं केवल तालकेतु को चाहता हूँ।

मंत्री—राजकुमार, मैं स्वामी के साथ इतना विश्वासघात नहीं करता, परन्तु वह जैसा घोर कठोर और अधर्म-कार्य करने गया है, वह मुझे भी पसन्द नहीं, इस लिये मैं बताये देता हूँ। तालकेतु मदालसा की हत्या करने गया है।

ऋतुध्वज—तुम्हें मार्ग बताना होगा। चलो। हाय। क्या सारा प्रयत्न—सम्पूर्ण परिश्रम व्यर्थ जायगा !

मंत्री—चलो !

(ऋतुध्वज और मंत्री का प्रस्थान)

इन्द्र—ये राक्षस कैसे भयंकर होते हैं ! ऋतुध्वज, इस युद्ध में किस वीरता से लड़े हैं—जैसे साक्षात् यम हो, महाकाल हो, मूर्तिमान् संहार हो !

शत्रुजित—परन्तु, मुझे तो युद्ध बड़ा ही भयंकर और कठोर कार्य्य प्रतीत होता है। अपने स्वार्थ के लिये हज़ारों की हत्या। रक्त की नदियाँ बहा कर विजय। विजय हृदय-मिलन में है, तलवार चलाने में नहीं। यह बात मैं उसी दिन समझ गया था जिस दिन ऋतुध्वज की मृत्यु का समाचार पाया।

इन्द्र—हमें राजकुमार के पास पहुँचना चाहिए। सम्भव है, वह संकट में पड़ जायें।

(दोनों का प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

———

दृश्य ७

[बन्दी गृह]

मदालसा—ये प्राण किस आशा से अटके हुए हैं। यह यातना कब तक भोगनी है। प्यारे तुम रूठ कर स्वर्ग सिधार गये ! पाप-पूर्ण पृथ्वी पर मुझे अकेला क्यों पटक गये । मेरा रूप गले की फाँसी हो गया । मेरे सुख-निकुञ्ज को जलाने के लिए ज्वाला बन गया। क्यों न तेरा ही अन्त हो गया।

(कुण्डला और दासी का प्रवेश)

कुण्डला—पाप नहीं, पुण्य है। आज तेरे पुण्यों का उदय हुआ है।

मदालसा—कौन कुण्डला ! या केवल माया !

कुण्डला—माया का अंधकार तो मिट गया, अब तो प्रकाश की उज्ज्वल किरणों का उदय हुआ है । तेरी परीक्षा के दिन समाप्त हो चुके हैं। जिस दृढ़ता से तूने परीक्षा दी है, उस तरह कौन दे सकता है ? मैं तुझे मुक्त करने आई हूँ।

मदालसा—क्या मुझे दुख से मुक्त करने आई है। इस कारागार से मुक्त करने आई है, इस शरीर से मुक्त करने आई है। अब मुझे अपनी आँखों का भी विश्वास नहीं रहा। आओ सखी आज गले मिल लें।

(गले मिलती हैं)

कुण्डला—बहन, रो मत। ईश्वर तेरा मंगल करेगा। तेरा सुख सुहाग अमर रहे।

मदालसा—यह क्या अभिशाप देती है। मैं सब कुछ खो चुकी।

कुण्डला—यह बात मिथ्या है।

मदालसा—वह मणि। वह ब्राह्मण।

कुण्डला—सब छल था। वह ब्राह्मण तालकेतु ही था।

मदालसा—क्या यह बात सत्य हो सकती है। आर्य पुत्र कहाँ हैं।

कुण्डला—तालकेतु से युद्ध कर रहे हैं।

दासी—अधिक देर करना ठीक नहीं। शीघ्र निकल चलो।

(तीनों का प्रस्थान)

ताल०—मदालसा ! मदालसा ! हें, यहाँ कोई नहीं है ! जिस जगह चिड़िया भी प्रवेश नहीं कर सकती, जहाँ वायु का भी स्वच्छन्द प्रवेश नहीं, जहाँ सूर्य-रश्मियों का भी प्रवेश नहीं है, वहाँ से मदालसा कहाँ गई। दीवालें खा गईं, छत निगल गई, या फर्श में समा गई। आज सारी बातें विपरीत हो रही हैं। आज मुझे मानना पड़ रहा है कि मनुष्य के ऊपर भी कोई शक्ति है। वही ईश्वर है, वही सृष्टि का नियन्त्र-करनेवाला है। पापी को दण्ड देता है। परन्तु मैं बहुत दूर निकल आया हूँ। अब लौटने का मार्ग नहीं, मदालसा, तू पातालकेतु और तालकेतु के जीवन में धूमकेतु की तरह उदय हुई, और सर्वनाश कर के विलीन हो गई।

(ऋतुध्वज का प्रवेश)

ऋतुध्वज—मदालसा कहाँ है ? शीघ्र बता।

ताल०—ज़मीन खा गई, छत निगल गई, दीवारें गटक गईं।

ऋतुध्वज—दुष्ट, पापात्मा, उचित उत्तर दे, नहीं मरने के लिए तैयार हो जा।

ताल०—आज मैं मरने के लिए सर्वथा तैयार हूँ। आज मैं झूठ नहीं बोलूँगा। ऋतुध्वज, मैं स्वयं इसी असमञ्जस में हूँ, मदालसा कहाँ है!

(सैनिकों-सहित, शत्रुजित का प्रवेश)

ऋतुध्वज—तुम झूठे हो। तुम्हारी किसी बात का विश्वास नहीं किया जा सकता। सैनिको, इसे बन्दी करो।

ताल०—बन्दी। असम्भव, राजकुमार, आज मैं अन्तिम बार युद्ध करना चाहता हूँ। वह भी तुम से ही। संसार में मुझ से युद्ध कर सकने वाला कोई नहीं।

ऋतुध्वज—क्षत्रिय युद्ध से मुँह नहीं मोड़ता। आओ, तालकेतु तुम अन्तिम बार हौसला निकाल लो। हम-तुम में जो बलवान हो—वही संसार में रहे।

(द्वन्द-युद्ध होता है, थोड़े युद्ध के पश्चात् तालकेतु मूर्च्छित हो जाता है)

शत्रुजित—सैनिको, तालकेतु को बन्दी करके ले जाओ।

(पट-परिवर्तन)

———

